वातायन
vatayan

वातायनम्

जुलाई - सितंबर 2026
अंक - 06

वातायन यूरोप की त्रैमासिक पत्रिका

दास्तानगोई : नासिरा शर्मा

बशीर बद्र : प्रो. हाइंस वरनर वेस्लर

इस माह के पेंटर-लेखक : अखिलेश

कविता / ग़ज़ल : ओम निश्चल, डॉ. शैलजा सक्सेना, आराधना झा श्रीवास्तव, श्रद्धा श्रीवास्तव

कहानी : सुषमा मुनीन्द्र, बबिता कुमावत, अनवर सुहैल, डॉ. मुकेश कुमार

लधु कथा : असगर वजाहत, रेखा राजवंशी

साक्षात्कार : प्रो. रेखा सेठी से अर्पणा संत सिंह की बातचीत

लेख / आलेख : बालेंदु शर्मा दाधीच, नर्मदा कुमारी, डॉ. गरिमा संजय दुबे

पुस्तक समीक्षा : चित्रलेखा रीविजिटेड: रणविजय राव
इक्कीसवां मिनट (संतोष श्रीवास्तव) : डॉ. नीलिमा रंजन

फ़िल्म समीक्षा : बायोपिक 'माइकल': रोहिणी कुमारी, दो दीवाने सहर में : स्वारंगी साने

छन्द-सलिला, व्याकरण पुराण, स्वास्थ्य, नटखट नगरी

अंतरराष्ट्रीय सहित्य : जर्मन लेखकों की कहानियाँ

आंचलिक सहित्य : बुन्देली भाषा और साहित्य

English : Dr. Achala Sharma : Meharchand's Prayer (Part 2)
Children's Stories : Myra S. Sethi, Suhan Sharma Sethi

आवरण चित्र- अखिलेश

वातायनम्- वसुधैव कुटुम्बकम् - वैश्विक साहित्यिक परिवार
(A Global Literary Family)

संरक्षक
डॉ. पद्मेश गुप्त

प्रमुख संपादक
दिव्या माथुर

प्रबंध संपादक
अर्पणा संत सिंह

संपादक (भाषा और अभिव्यक्ति)
प्रो. राजेश कुमार

संपादन सहयोग
प्रो. रेखा सेठी
डॉ. वंदना मुकेश
आराधना झा श्रीवास्तव (आंचलिक)
अजेय जुगरान (अंग्रेज़ी)
ऋचा जैन (विश्व साहित्य)

क्रिएटिव मार्केटिंग मैनेजर
अंतरीपा ठाकुर मुखर्जी

वेब/तकनीकी विशेषज्ञ
शिवि श्रीवास्तव

कोषाध्यक्ष
एडवर्ड क्रास्क

सलाहकार
मीरा मिश्रा कौशिक, ओ.बी.ई.
डॉ. निखिल कौशिक
तितिक्षा दंड शाह

भारत में प्रतिनिधि
प्रो. मधु चतुर्वेदी

युद्ध, संघर्ष और महामारी के दौर में साहित्यिक और सांस्कृतिक सौहार्द के सेतु के रूप में - वैश्विक साहित्यिक परिदृश्य में नई प्रासंगिकता के साथ साहित्य की आत्मा सभी को एक सूत्र में बाँध देती है, जहाँ भाषा, भूगोल और सांस्कृतिक सीमाएँ गौण हो जाती हैं। साहित्य, कला और दर्शन में शांति, सहिष्णुता और विविधता के विचारों का अन्वेषण, जिनमें साझा मानवता का संवाद है, तथा करुणा, संघर्ष, प्रेम, विस्थापन, स्मृति, पहचान और बेहतर भविष्य की आकांक्षा है। इस संवाद में हर लेखक, हर कलाकार, हर पाठक इस वैश्विक परिवार का अभिन्न अंग है।

वातायनम् का लक्ष्य है, अतीत की प्रेरणादायक रचनात्मक धरोहर, वर्तमान की आधुनिकता और नवीन प्रयोगधर्मिता की अनुभूतियों की सम्मिलित अभिव्यक्ति - जो भविष्य के लिए धरोहर हो, सेतु बने। हमारा प्रयास रहेगा कि वातायनम् केवल पारंपरिक साहित्य तक सीमित न रहे, बल्कि वह नए लेखन और नई प्रौद्योगिकी के साथ कदम से कदम मिलाकर विश्व की अन्य भाषाओं और साहित्य के साथ वैश्विक मंच स्थापित कर सके।

वेबसाइट: www.vatayaneurope.com, **यू-ट्यूब:** www.youtube.com/@vatayanuk
ई-मेल: vatayaneurope@gmail.com

वातायनम् में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों से वातायनम् टीम का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
पत्रिका में प्रकाशित तस्वीरें गूगल, पिनटेरेस्ट और अन्य अंतरजाल संसाधनों से साभार ली गई हैं।

अनुक्रम

संपादकीय 4

आपने लिखा है 5

दास्तानगोई:
एशिया महाद्वीप में क़िस्सागोई: नासिरा शर्मा 7

श्रद्धांजलि: बशीर बद्र 10

इस माह के पेंटर-लेखक: अखिलेश 12

कविता:
ओम निश्चल: ग़ज़लें 13
डॉ. शैलजा सक्सेना: मिलते रहा करो यार,
कोना-कोना 14
आराधना झा श्रीवास्तव: नई पीढ़ी की माँएँ 16
श्रद्धा श्रीवास्तव: निस्तब्धता, अस्तित्व की विरासत 16

कहानी:
सुषमा मुनीन्द्र: यह जो है, प्रेम है 17
बबिता कुमावत: नेटवर्क के बहाने 22
अनवर सुहैल: डिमेंशिया 23
डॉ. मुंकेश कुमार मिश्रा: नोटिस 27

लघु कथा:
असगर वजाहत: चूहेदान 29
रेखा राजवंशी: गुड-न्यूज़ और नियो-नाज़ी 30

साक्षात्कार:
प्रो. रेखा सेठी से अर्पणा संत सिंह की बातचीत 31

लेख / आलेख:
बालेंदु शर्मा दाधीच: ए.आई की अथाह रचनात्मकता ... 34
नर्मदा कुमारी: एक फ्लावर-शो ऐसा भी 37

ललित निबंध:
डॉ. गरिमा संजय दुबे: अंसुवन जल सींचि सींचि ... 39

पुस्तक समीक्षा:
विवेक चतुर्वेदी: स्त्रियां घर लौटती हैं: रामेश्वर प्रसाद... 42
चित्रलेखा रीविजिटेड: रणविजय राव...................... 45
संतोष श्रीवास्तव: इक्कीसवां मिनट: नीलिमा रंजन 47

फ़िल्म समीक्षा:
बायोपिक: माइकल: रोहिणी कुमारी 48
दो दीवाने सहर में: स्वारंगी साने 50

स्थाई स्तम्भ
छन्द-सलिला: प्रो. मधु चतुर्वेदी: गीतिका 51
व्याकरण पुराण: डॉ. अशोक बत्रा 52
स्वास्थ्य: रमणीक माथुर: बच्चे और बुखार 53
नटखट नगरी: मुकेश नेमा: आँधी डाकिया है 54

अंतरराष्ट्रीय साहित्य:
अल्फ्रेड ड्योब्लिन की कहानी: सहायिका 54
फ्रांज काफ़्का: एक छोटी स्त्री: प्रियंका ओम 59

आंचलिक सहित्य:
बुन्देली भाषा और साहित्य: डॉ. सुधा दीक्षित 64
साकेत सुमन चतुर्वेदी 66
निहाल चन्द्र शिवहरे 69

अंग्रेज़ी साहित्य:
Meharchand's Prayer: Dr Achala Sharma 70
Myra S. Sethi: The Mysterious Cheese Thief... 77
CSuhan Sharma Sethi: The Primal Force 79

संपादकीय

प्रिय सहृदयो,

स्नेह और सम्मान के साथ हम **वातायनम्** का सातवाँ अंक आपके हाथों में सौंप रहे हैं। यह हमारे लिए हर्ष और विनम्र संतोष का विषय है कि पाठकों का निरंतर प्रेम, सहयोग और विश्वास इस पत्रिका की यात्रा को नई ऊर्जा दे रहा है। आपके सुझाव, प्रतिक्रियाएँ और आत्मीय संवाद हमारे लिए दिशा-सूचक दीपक की तरह हैं, जिनके आलोक में हम **वातायनम्** को और अधिक सार्थक, उपयोगी और समृद्ध बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

पिछले दिनों प्रख्यात शायर बशीर बद्र के निधन से साहित्य-जगत ने एक ऐसी आवाज़ खो दी, जिसने संवेदना, प्रेम और जीवन के सूक्ष्म अनुभवों को अद्भुत सादगी और गहराई के साथ शब्द दिए। **वातायनम्** परिवार उन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण करता है। इस अंक में उन पर केंद्रित एक आलेख शामिल करके हम उनकी रचनात्मक स्मृति को विनम्र नमन अर्पित कर रहे हैं।

हमेशा की तरह इस अंक में हमारे सभी स्थायी स्तंभ मौजूद हैं। इनके साथ ही, कहानियों, कविताओं, आलेखों और साक्षात्कार का विविधतापूर्ण साहित्यिक गुलदस्ता आपके लिए सजाया गया है। देश-विदेश से चयनित ये रचनाएँ केवल भावनाओं को उद्वेलित ही नहीं करतीं, बल्कि मनुष्य होने के अर्थ, मानवीय मूल्यों और जीवन की कोमलतम आस्थाओं को भी पुष्ट करती हैं।

ईदार हम बुंदेली भाषा और साहित्य की नौनी ताजी और खास जानकारियां आपके अगाऊं परोस रये है। बुंदेली माटी सें जुरीं पुरानीं लोक यादें साहित्य कला संस्कृति आदि सें बुंदेली की मिसरी जैसी मिठास सें आपको मों रसमय हो जैहें। भाषायी विरासत की जिंदा और अपनी लगवे वारीं इन रचवेवारी नयी नयी सुंदर अनौखी बातन सें आपको दिल और दिमाग खुशी सें भर जैहै।

The English section, too, features an engaging story for readers this time, along with two entertaining and heartwarming stories for children. We are confident that these pieces will connect readers of various age groups with new dimensions of enjoyment, imagination, and sensitivity.

हर अंक को आपके सामने सार्थक और संतोषजनक रूप में प्रस्तुत करने के लिए रचनाओं के चयन, संपादन, संयोजन और प्रस्तुति में पूरी टीम मनोयोग से श्रम करती है। इस सतत प्रयास में हमारे लेखकों, संपादकों, समीक्षकों और तकनीकी सहयोगियों का योगदान अमूल्य है। हम सभी के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

आशा है, **वातायनम्** का यह अंक आपके पाठकीय मन को स्पर्श करेगा और साहित्य के साथ आपके आत्मीय संबंध को और गहरा करेगा। अंक का आनंद लीजिए। हमेशा की तरह हम आपकी खट्टी-मीठी प्रतिक्रियाओं, सुझावों और स्नेहिल टिप्पणियों की प्रतीक्षा करेंगे, ताकि आने वाले अंकों को और भी सुंदर, सरस और समृद्ध रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत कर सकें।

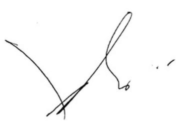

राजेश कुमार

आपने लिखा है

प्रिय दिव्या, पाँचवें अंक तक आते-आते वातायनम् लगभग संपूर्ण और बहुत समृद्ध पत्रिका हो गई है। सारे स्तंभ, कहानियाँ, आंचलिक और अँग्रेज़ी रचनाएं - साथ ही साथ विदेशी भाषाओं की लोक-कथाएं - पत्रिका को बहुत संपूर्ण और बहुत समृद्ध बनाती हैं। मेरी बहुत बहुत शुभेच्छा और बधाई तथा अभिनंदन पूरी वातायनम् टीम का।

सूर्यबाला, मुंबई

'वातायनम्' का पाँचवाँ अंक देखा। बहुत सुन्दर है। इस बार नासिरा शर्मा की किस्सागोई जोडकर उनके व्यक्तित्व का नया आयाम सामने आया है। इससे पहले मैंने कहीं भी उनकी ऐसी रचना नहीं देखी है। विज्ञान व्रत निरंतर छोटी बहर की सार्थक ग़ज़लें दे रहे हैं। अच्छे चित्रकार भी वे हैं।

हर संपादक पत्रिका के स्तर को बनाये रखने के लिए स्थापित रचनाकारों को स्थान देता है, देना चाहिए। पर संपादक का एक और काम है कि वह नये लेखकों को भी प्रश्रय दे। यह रिस्की काम है पर ज़रूरी है।

बधाई और शुभकामनाएं।

सोमदत्त शर्मा, गाजियाबाद

आपकी वातायनम् पत्रिका का यह अंक समकालीन वैश्विक परिदृश्य में साहित्य की अपरिहार्य भूमिका को अत्यंत संवेदनशील और व्यापक दृष्टि से रेखांकित करता है। युद्ध, संघर्ष और महामारी जैसे संकटग्रस्त समय में जब मनुष्य का बाह्य संसार विखंडित और अस्थिर दिखाई देता है, तब साहित्य अपनी आंतरिक ऊर्जा, करुणा और मानवीय चेतना के माध्यम से मनुष्यता को पुनः जोड़ने का कार्य करता है।

लेखक ने साहित्य को भाषा, भूगोल और सांस्कृतिक सीमाओं से परे एक ऐसे सार्वभौमिक अनुभव के रूप में देखा है, जो समूची मानवता को एक सूत्र में बाँध देता है। यह दृष्टि भारतीय साहित्यिक परंपरा के उस मूल मंत्र की याद दिलाती है - वसुधैव कुटुम्बकम्" - जहाँ समस्त विश्व को एक परिवार माना गया है। अनुच्छेद में साहित्य, कला और दर्शन को शांति, सहिष्णुता और विविधता के वाहक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो आज के विभाजित और तनावपूर्ण विश्व में अत्यंत प्रासंगिक है। विशेष रूप से, इसमें जिन मानवीय अनुभूतियों—करुणा, संघर्ष, प्रेम, विस्थापन, स्मृति, पहचान और बेहतर भविष्य की आकांक्षा—का उल्लेख किया गया है, वे आधुनिक साहित्य के मूल कथ्य रहे हैं। ये वे संवेदनात्मक बिंदु हैं, जहाँ व्यक्ति का निजी अनुभव सामूहिक मानव अनुभव में रूपांतरित हो जाता है। इस प्रकार यह अनुच्छेद साहित्य को केवल शब्दों का विन्यास नहीं, बल्कि मानव आत्मा का साझा दस्तावेज़ मानता है।

‘वातायनम्’ की अवधारणा इस टिप्पणी का सबसे सशक्त पक्ष है। यह नाम ही प्रतीकात्मक रूप से एक ऐसे ‘झरोखे’ या ‘खिड़की’ का बोध कराता है, जो अतीत, वर्तमान और भविष्य—तीनों की ओर खुलती है। अतीत की प्रेरक रचनात्मक धरोहर, वर्तमान की आधुनिकता और प्रयोगधर्मिता, तथा भविष्य के लिए एक सांस्कृतिक विरासत - इन तीनों को जोड़ने का जो संकल्प इस अनुच्छेद में व्यक्त हुआ है, यह दृष्टि आज के डिजिटल युग में विशेष महत्व रखती है, जहाँ साहित्य के स्वरूप, पाठक-वर्ग और अभिव्यक्ति के माध्यम लगातार परिवर्तित हो रहे हैं। इस संदर्भ में ‘वातायनम्’ केवल एक साहित्यिक मंच नहीं, बल्कि संस्कृति, संवेदना और तकनीक के समन्वय का जीवंत प्रयास बनकर उभरता है। साहित्य की उस विश्व-मानवीय भूमिका को पुनः प्रतिष्ठित करता है, जो विभाजन के विरुद्ध संवाद, हिंसा के विरुद्ध करुणा, और निराशा के विरुद्ध सृजन का पक्षधर है। इसमें निहित भावबोध साहित्य को एक सांस्कृतिक दायित्व, एक

मानवीय प्रतिबद्धता और एक वैश्विक सह-अस्तित्व की परियोजना के रूप में स्थापित करता है।

सुनीता श्रीवास्तव

मुख-पृष्ठ अत्यंत आकर्षक है। इस सुंदर और समृद्ध अंक के सभी रचनात्मक सहयोगियों और संपादक मंडल को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं! आदरणीया दिव्या माथुर जी का हिंदी साहित्य के प्रति प्रयास अत्यंत सराहनीय और अनुकरणीय है।

संध्या प्रकाश

बहुत स्तरीय अंक। कुछ रचनाएँ व कविताएँ अभी पढ़ी हैं। कलेवर भी सुंदर है।

अनीता सेठी

साहित्यिक पत्रिका वातायनम' अंक 5 के उत्कृष्ट प्रकाशन के लिए सम्पादन मंडल सहित समादृत रचनाकारों को बधाई। साहित्यिक उत्कृष्टता को आपने और सहयोगी सदस्यों ने अक्षत बनाये रखा है। यह गौरवान्वित करने वाली बात है। अंक में प्रकाशित रचनाएँ विविधतापूर्ण, समसामयिक और पठनीय हैं।

हिन्दी भाषा-साहित्य के वैश्विक विस्तार में आप लोगों का योगदान सराहनीय है। आपकी रचनात्मक प्रतिबद्धता उत्फुल्लित करती है ।

बहुत बधाई। शुभकामनाएँ।

मीनकेतन प्रधान

वातायनम की सामग्री और मुखपृष्ठ दोनों ही आकर्षक हैं। पठनीय, उत्कृष्ट रचनाओं का चयन किया है आपने। हार्दिक बधाई।

सादर,
इला प्रसाद, सम्पादक, हिन्दी चेतना

प्रणाम,
अभिनव पत्रिका का यह अंक पाकर अपार हर्ष हुआ। एतदर्थ आभार। पत्रिका उच्च स्तरीय, पृष्ठ दर पृष्ठ संग्रहणीय और विश्वव्यापी फ़लक सँजोये स्वस्थ मानसिक खुराक से संपृक्त है। कीर्ति-अकीर्तित नायकों को नमन। पूरी टीम एवं साहित्य सृजन का हार्दिक अभिनंदन।

डॉ. जयशंकर यादव, बेलगाम, कर्नाटक, भारत

एशिया महाद्वीप में क़िस्सागोई की दास्तानगोई

कुछ यादें... कुछ हकीकतें!

नासिरा शर्मा

साहित्य अकादमी और व्यास सम्मान से पुरस्कृत लेखिका, संपादक, अनुवादक, फ़िल्म-निर्माता

nasera.sharma@yahoo.co.in

अपने समय के दक़ियानूसी प्रतिबन्धों पर न केवल मर्दों ने एतराज़ किया बल्कि औरतों ने भी अपनी अहसहमति दिखाई। भले ही इतिहास लिखने वालों ने पक्षपात किया और अपनी कुंठा और तंगनज़री से उनके कारनामों को दर्ज नहीं किया या फिर उनकी आवाज़ को सुनी-अनसुनी कर दिया। बतौर मिसाल, यदि इस उदासीनता को हम गायन में देखते हैं तो पता चलता है कि बेहद सुरीली और मनमोहक आवाज़ रखने वाली महिलाओं पर उनके परिवार वालों ने अनेक कारणों से - समाज के डर से - गायन के क्षेत्र में रोक लगा दी।

औरतों की आवाज़ का ग़ैर-मर्द के कान तक पहुँचना अच्छा नहीं समझा जाता था। उस समय संगीत की अपनी परम्परा भारतवर्ष में मौजूद थी। लेकिन भजन, लोरी, बिरह के गाने की रीत पर कोई रोक नहीं थी जो घर की चारदिवारी में ही अंजाम पा जाती थी। समय बदला ज़रूर मगर बेहद धीमी गति से, तो भी समाज का नज़रिया नहीं बदला। जिन परिवारों ने उन सारी बन्दिशें तोड़कर गायन में अपनी बेटियों को इजाज़त दी, उनको सम्मान नहीं मिला। यह अलग बात है कि उनके इस गुण के कारण उनको पसंद करने वाले काफ़ी थे। कला की दृष्टि से उन्हें परखने व सराहने वाले बहुत थे। कोठे जब बंद हो गए और कलाकार के रूप में पहले रेडियो और बाद में दूरदर्शन पर उनके कार्यक्रम प्रसारित होने लगे। वर्तमान की बदलती परिस्थितियों में उन्हें आदर और सम्मान से देखा जाता है; उनके जीवन पर फ़िल्में व वीडियो बनाए जाते हैं। भारत के अलावा विदेशों में भी, ख़ासकर हमारे पड़ोसी देशों में भी कमोबेश यही स्थिति रही।

शास्त्रीय गायिका, नृत्यांगना और सब से पहली रिकॉर्डिंग स्टार गौहर जान 26 जून 1873 में आज़मगढ़ में पैदा

हुई और 17 जनवरी 1930 में उनकी मृत्यु हुई । उनके पिता विलियम राबर्ट योवार्ड आइस फैक्टरी में काम करते थे। अमेरिकन पिता ने विक्टोरिया हेमिंग्स से 1872 में विवाह किया जो जन्म से भारतीय थी और संगीत व नृत्य में दक्षता प्राप्त थीं, यह शादी चली नहीं। माँ अपनी बेटी एंजीलीना को लेकर जीवन के संघर्ष में फंस गई फिर अचारक उनकी मुलाकात ख़ुरशीद नामक व्यक्ति से हुई, जो उनके गाने को पसंद करते थे। विक्टोरिया ने इस्लाम धर्म स्वीकार किया और बेटी का नाम बदलकर 'गौहर जान' रख दिया। गौहर को भी वही सब कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं जो उस ज़माने की रवायत थी, उन्हें बराबर की इज्ज़त नहीं मिलती थी।

आज ईरानी औरतों की चर्चा बहुत हो रही है, विशेषकर इज़रायली-अमेरिकी आक्रमण के बाद जहाँ पर्दे में रहकर, हिजाब के साथ वे जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी धाक जमाए हैं, यहाँ

तक कि साइंस और गणित में उनकी उपलब्धियाँ सामने आ रही हैं। इसके अलावा, सैन्य क्षेत्र में भी उनका योगदान सराहनीय है। भारत की तरह, वहाँ भी औरतें अपनी पूर्वज महिलाओं की खोजख़बर और शोध कार्य कर रही हैं। ख़ासकर उन बादशाहों के सन्दर्भ में जहाँ उनकी प्रशंसा का गुणगान मुक्तकंठ से किया जाता है मगर उनकी प्रिय गायिका का असली नाम तक नहीं लिया जाता और न ही उनके परिवेश के बारे में कोई विशेष सूचना मिलती है। इस तरह की आलोचना और प्रश्न जब उठने लगे तो शोध शुरू हुए। कलाकार स्त्रियों के बारे में आई यह चेतना वास्तव में विश्व स्तर पर प्रशंसनीय है। और इसी सन्दर्भ में हम क़मर अल-मलूक वज़ीरी जिन्हें ईरान में उनके स्टेज पर गाने से उस सिनेमाघर को तोड़ा-फोड़ा गया था मगर दूसरी तरफ़ उन्हें 'मलिका-ए-तरन्नुम' कहा गया। उनके बारे में जानेंगे।

यह उन दिनों की बात है जब ईरान में औरत की आवाज़ को गुनाह समझा जाता था। मगर इस सोच को तोड़ने वाली एक महिला थी। आप जानना चाहेंगे कि वह कौन थी, जिसने बिना हिजाब के मर्दों के सामने कहा था कि मैं शोहरत के लिए नहीं गाती बल्कि ईरानी औरतों के लिए गाती हूँ। वह लड़की जिसका नाम क़मर-अल-मलूक वज़ीरी था। जो चांद (क़मर) की तरह सुन्दर थी और सुरीली आवाज़ वाली थी, वह अपनी गायकी के द्वारा सूरज की तरह चमकी।

कज़विन में इनका जन्म हुआ। माँ बचपन में मर गई और दादी ने उनकी परवरिश की, जो खुद हरमरु नासिरुदीन शाह में धार्मिक नज्में सुनने जाती थीं। इस तरह उनके कानों में बचपन से ही लय और अलाप गूँजने लगे जिससे उनके अंदर गायकी के प्रति लगाव पैदा हो गया। जब उनसे किसी जलसे में गाने को कहा गया तो उनकी आवाज़ सुनकर सब हैरतज़दह रह गए थे। उन्होंने बाद में अपने उस्ताद मुर्तुज़ा खान से तालीम हासिल की ज़रूर मगर उन्हें अपनी कला को उस तरह पेश करने का मौक़ा नहीं मिल पा रहा था जो पुरुषों को प्राप्त था।

उनका गीत 'अज़ खूने जवानाने वतन' (अपने देश के जवानों के खून से) में इतना दर्द था कि सुनने वालों की आँखों से आँसू टपकने लगते थे। उनकी गायकी के जहाँ संगीत प्रेमी दीवाने थे वहीं पर उनके इस तरह गाने से लोगों का एक तबका नाराज़ था। उन्होंने इसकी परवाह नहीं की और गायकी की दुनियाँ में अपना पैर जमाती रहीं। उनका पहला कार्यक्रम ग्रैंड होटल तेहरान में हुआ था। वर्ष 1951 था और बिना हिजाब के स्टेज पर गाने वाली यह पहली महिला थी जिनकी हिम्मत साहस और विश्वास को देखकर जहाँ औरतें प्रसन्न व चकित थीं; वहीं पर कुछ पुरानी सोच रखने वाले पुरुषों के तन-बदन में आग लग गई और उन्होंने आपे से बाहर होकर उन्होंने कड़ी आलोचना की मगर क़मर की लोकप्रियता बढ़ी और 1940 में रेडियो पर इनकी आवाज़ लोगों को सुनने को मिलने लगी। यह एक बग़ावत थी जो चुटकुलों के रूप में शुरू हुई।

क़मर-अल-मुल्क वज़ीरी जब 1905 में पैदा हुई तब काज़ार साम्राज्य के

विरोध में क्रान्ति की शुरुआत हुई थी। काज़ार शाह मुजफ्फर अल उद्दीन का समय था; औरतें पर्दे में रहती थीं। 1924 में जब इनका कार्यक्रम छह दिनों तक 'सिपाह सिनेमा' में चला तो भीड़ उमड़ पड़ी और टिकट का दाम उस समय में 50 तुमना हो गया, जो उस समय के अफसर की दो माह की तनख्वाह के बराबर था। उनकी आवाज़ का जादू ऐसा था कि सुनने वाले भाव-विभोर हो जो भी उस समय उनके पर्स या हाथों में होता स्टेज पर चढ़कर उन्हें उपहार के रूप में देते, जिस में रूपए और सोने के ज़ेवर भी होते, जो वह बाद में ज़रूरतमंदों में बांट देती थीं।

क़मर-अल-मुल्क वज़ीरी की मृत्यु 1959 में हुई। मरने से पहले उन्होंने वसीयत की थी कि मेरे कब्र पर लिखा जाए, 'मैं धनवान नहीं मरी लेकिन अपनी आवाज़ मैंने ईरान की जनता को ज़रूर दी। मेरी लाश को ईरान के झंडे में लपेटा जाए और कब्र पर लिखा जाए 'वह कोई जिसने ईरानी औरत की आवाज़ को ज़िन्दगी दी, वह यहाँ दफ़न है।' आज जब उनकी आवाज़ सुनी जाती है तो पता चलता है कि इस तरह के गाने का चलन कब और किसने शुरू किया था। वह केवल एक गायिका नहीं थी बल्कि हुनरमंद महिलाओं की ऐतिहासिक पंक्ति में शामिल थी जिन्होंने उसे एक नया मोड़ दिया। लेकिन दुःख की बात यह है कि जब उनकी लाश को कफ़न-दफ़न के लिए मस्जिद की तरफ़ ले गए तो वहाँ के जिम्मेदार इंचार्ज ने उनकी लाश को अंदर जाने और उनके दीदार के लिए मना कर दिया। रूढ़िवादिता की जेहन जैसी क़मर गायिका के लिए थी वैसी ही अपने जमाने में हाफ़िज़ और शाहनामा फिरदौसी के रचने वाले कवियों के लिए भी थी। यह बहुत बड़ी विडम्बना है कि हुनर और धर्म के बीच आई जड़ता लोगों को दो फाँक कर देती है।

दूसरी हुकूमत रेज़ा पहलवी की थी जहाँ न केवल लिबास में तब्दीली आई बल्कि ईरान हर क्षेत्र में आधुनिकता की तरफ बढ़ने लगा। गुगुश और हुवैदा जैसी गायिकाओं को रात-दिन सुना जाने लगा जो हर तरह के फैशन के कपड़ों और खुले बालों व चेहरे के साथ नज़र आती थीं। फिर इस्लामिक क्रान्ति ने औरतों के लिबास बदले। हिजाब ज़रूरी कर दिया गया और रूमानी गानों की जगह धार्मिक व देशभक्ति के गीत-संगीत ने स्थान पा लिया परन्तु जो ईरानी विदेश में जा बसे उन्होंने गाने को गाने की तरह गाया। कुछ वर्षों इस तरह की पाबन्दी रही ज़रूर ईरान में मगर गज़लों और नज़्मों को उन गायिकाओं ने प्राइवेट ट्यूशन देकर ज़िन्दा रखा। समय करवटें बदलता है मगर कला व कलाकार हमेशा समय से प्रभावित नहीं होता है।

बशीर बद्र: इंसानियत, याद और मलाल का शायर

प्रो. हाइंस वरनर वेस्लर

भाषा विज्ञान व वाङ्मयशास्त्र विभाग, उप्सला विश्वविद्यालय-स्वीडन
heinzwerner.wessler@gmail.com

शायर बशीर बद्र (15 फ़रवरी 1935 – 28 मई 2026) के इंतक़ाल के साथ भारतीय अदब ने अपनी सबसे मक़बूल, लेकिन साथ ही सबसे पेचीदा आवाज़ों में से एक को खो दिया है। भोपाल में 28 मई 2026 को 91 वर्ष की उम्र में उनका निधन हुआ। वे उन उर्दू अदीबों की पीढ़ी से थे जिन्होंने भारत के बँटवारे के बाद भी क्लासिकी और जदीद उर्दू अदब को भारत की गंगा-जमुनी तहज़ीब का स्वाभाविक हिस्सा समझा। उनकी शायरी लाखों लोगों ने पढ़ी, याद की और बार-बार दोहराई। उनकी ग़ज़लों के अनेक अशआर रोज़मर्रा की ज़बान का हिस्सा बन गए। आशिक़ों से लेकर सियासतदानों तक, सबने उन्हें अपने-अपने मौक़ों पर इस्तेमाल किया है - और आगे भी करते रहेंगे।

बशीर बद्र का जन्म 1935 में उत्तर प्रदेश के अयोध्या के निकट बुकिया गाँव में हुआ था। उन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में तालीम हासिल की, वहीं से पीएच.डी. की और बाद में उर्दू पढ़ाई भी। इत्तफ़ाक़ से उनका शोध-प्रबंध भी आज़ादी के बाद उर्दू

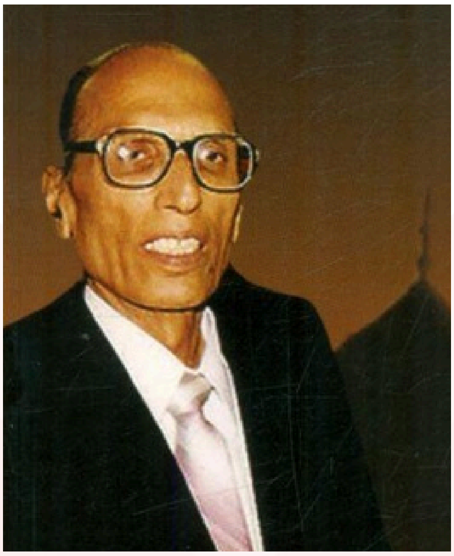

ग़ज़ल के इर्तिक़ा पर था — “आज़ादी के बाद उर्दू ग़ज़ल का तनक़ीदी मुताला” (1973)। दिलचस्प बात यह है कि अध्यापक और शोधकर्ता के रूप में वे अपेक्षाकृत कम जाने गए, जबकि शायर के रूप में उन्हें असाधारण शोहरत मिली। बाद में उन्होंने मेरठ कॉलेज में कई वर्षों तक पढ़ाया और फिर भोपाल चले गए, जहाँ उन्होंने अपने आपको पूरी तरह तख़्लीक़ी लेखन के लिए वक़्फ़ कर दिया। उनका जीवन उस मुस्लिम बुद्धिजीवी तबक़े की नुमाइंदगी करता है जिसने 1947 के बाद भारत में रहकर मुश्किल हालात में उर्दू अदब की रिवायत को ज़िंदा रखा।

अदबी लिहाज़ से बशीर बद्र शुरू में पूरी तरह क्लासिकी ग़ज़ल की परंपरा से जुड़े हुए थे लेकिन अपने दौर के अनेक अकादमिक शायरों के बरअक्स उन्होंने उसकी ज़बान और अंदाज़ को बेहद सादा बना दिया। उन्होंने मुश्किल अरबी-फ़ारसी लफ़्ज़ों से जहाँ तक मुमकिन हो परहेज़ किया। ऐसे अल्फ़ाज़ अदबी रंग तो पैदा करते हैं, मगर आम क़ारी के लिए कभी-कभी दूरी भी पैदा कर देते हैं। इसी वजह से बशीर बद्र पारंपरिक उर्दू हल्कों से कहीं आगे निकलकर एक बहुत बड़े पाठक-वर्ग तक पहुँचे। बॉलीवुड की दुनिया से उन्होंने हमेशा एक एहतियाती फ़ासला बनाए रखा। उनके अनेक कलाम जगजीत सिंह, ग़ुलाम अली और रूप कुमार राठौड़ जैसे मशहूर गायकों ने गाए, लेकिन वे ख़ुद फ़िल्मी गीतकार नहीं बने। दिलचस्प बात यह है कि उनके बेटे नुसरत बद्र बॉलीवुड के नामचीन गीतकारों में शुमार होते हैं।

बशीर बद्र की भाषा और शैली इतनी आसान थी कि आम लोग भी उससे जुड़ सके, लेकिन उनकी असली पहचान अदबी ग़ज़ल ही रही। उनके

अशआर केवल रिसालों और अदबी पत्रिकाओं में ही नहीं छपे, बल्कि ट्रकों के पीछे, घरों की दीवारों पर, मुबारकबाद कार्डों में और बाद में सोशल मीडिया पर भी दिखाई देने लगे। यही ग़ैरमामूली मक़बूलियत उनके लिए आलोचना का सबब भी बनी। कुछ नक़्क़ादों ने उन्हें ग़ज़ल का बड़ा मुजद्दिद नहीं, बल्कि असरदार और जज़्बाती शेर कहने वाला उस्ताद माना। उनकी लोकप्रियता को कभी-कभी उर्दू शायरी की 'सादगी' या 'सतहीपन' का निशान भी कहा गया।

लेकिन बशीर बद्र की ग़ज़लों की सबसे बड़ी ख़ूबी उनकी ग़ैरमामूली इख़्तिसार-पसंदी और मानी की गहराई है। मसलन:

कुछ तो मजबूरियाँ रही होंगी,
यूँ कोई बेवफ़ा नहीं होता।

या

उजाले अपनी यादों के हमारे साथ रहने दो,
न जाने किस गली में ज़िंदगी की शाम हो जाए।

ऐसे शेर, जो एक तरफ़ बेहद आसान हैं और दूसरी तरफ़ गहरे इंसानी एहसास से भरे हुए, हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनों की लोकप्रिय अदबी संस्कृति का हिस्सा बन गए।

लेकिन बशीर बद्र को सिर्फ़ मुहब्बत और जुदाई का शायर कहना उनके साथ नाइंसाफ़ी होगी। उनके जीवन और फ़िक्र पर 1987 के मेरठ दंगों का गहरा असर पड़ा। उन फ़सादात के दौरान उनका घर जला दिया गया और उनके कई मसौदे, किताबें और निजी दस्तावेज़ नष्ट हो गए। यह हादसा उन्हें कट्टर सियासी नक़्क़ाद बना सकता था। उनके अनेक समकालीनों ने बढ़ते हुए मज़हबी ध्रुवीकरण के ख़िलाफ़ खुली आवाज़ उठाई लेकिन बशीर बद्र ने दूसरा रास्ता चुना। इसी तजुर्बे की पैदावार था यह शेर जो इंसानी बेरहमी पर अफ़सोस और दुख का इज़हार करता है - इल्ज़ाम से ज़्यादा मातम का-

लोग टूट जाते हैं एक घर बनाने में,
तुम तरस नहीं खाते बस्तियाँ जलाने में।

बशीर बद्र हमेशा गहरी, अगरचे मलाल से भरी हुई, इंसानियत के शायर रहे; जहाँ फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, हबीब जालिब या बाद में राहत इंदौरी ने खुलकर सियासी मौक़िफ़ अपनाया, वहाँ बशीर बद्र ने सुलह, हमदर्दी और बातचीत की ज़बान को तरजीह दी। उनका शायद सबसे ज़्यादा उद्धृत शेर है:

दुश्मनी जम कर करो लेकिन ये गुंजाइश रहे,
जब कभी हम दोस्त हो जाएँ तो शर्मिंदा न हों।

यह शेर भारत-पाकिस्तान संवाद से जुड़ी बैठकों में बार-बार उद्धृत किया गया, जिसे सिर्फ़ पत्रकारों और बुद्धिजीवियों ने ही नहीं, बल्कि सियासतदानों ने भी इसे अपनाया। यह शेर संवाद और फिर से दोस्ती की संभावना को ज़िंदा रखने की बात करता है। शायद इसी वजह से बशीर बद्र आज किसी दूसरी ही दुनिया और दौर की शख़्सियत मालूम होते हैं। बशीर बद्र की शायरी रियासत, क़ौम या इंक़लाब की नहीं, बल्कि याद, जुदाई, आरज़ू और इंसानी कमज़ोरी की शायरी है। समकालीन उर्दू शायरी में शायद ही कोई दूसरा शायर रहा हो जिसने दर्द को इतनी नफ़ासत के साथ शायरी में ढाला हो और पेचीदा इंसानी तजुर्बों को इतने कम अल्फ़ाज़ में बयान किया हो।

बशीर बद्र का जाना केवल एक बड़े शायर का जाना नहीं है; यह उस पूरी अदबी दुनिया के धीरे-धीरे ओझल हो जाने का एहसास भी है जिसमें इंसानियत, याद और मलाल अब भी एक-दूसरे से अलग नहीं हुए थे। यही वजह है कि उनकी शायरी केवल मुशायरों तक सीमित नहीं रही, बल्कि देश के राष्ट्रपति, राजनेता, बौद्धिक पाठक से लेकर आम जनमानस के दिलों और घरों तक पहुँची। साहित्य और नाटक अकादमी में किए गये योगदानों के लिए उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गया था।

इस माह के कलाकार: अखिलेश

अखिलेश

56akhilesh@gmail.com

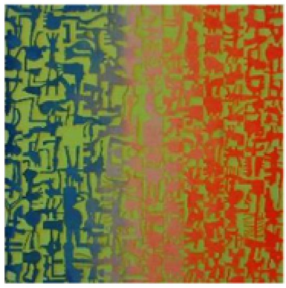

अगस्त 1956 में इंदौर में जन्में पेंटर लेखक संग्रहाध्यक्ष, अखिलेश ने फ़ाइन आर्ट्स में नैशनल डिप्लोमा किया, 1976 में आयोजित पहले सोलो-शो 'अखिल और अखिल' के बाद सैंकड़ों राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय (जापान, अमेरिका, सिंगापुर, फ़्रांस, हॉलैंड, रूस इत्यादि) की प्रतिष्ठित कला-दीर्घाओं में एकल प्रदर्शनियाँ प्रस्तुत कीं, वक्तव्य दिए; फ़्रांस और ऑस्ट्रिया में आर्टिस्ट-इन-रेसीडेंसी भी रहे।

पुस्तकें: मक़बूल फ़िदा हुसैन की जीवनी और विचार (राहुल सोनी द्वारा अनुवादित), दरसपोथी, शीर्षक नहीं, अचम्भे का रोना, रज़ा: जैसा मैंने देखा, उनके बारे में, उनके विरुद्ध: स्वामीनाथन एक पक्ष।

अनुवाद: मार्क शाग़ाल की जीवनी आपबीती, वफ़ा की अजीब दास्ताँ: रूपमती बाजबहादुर की प्रेमकथा, कुकुर नक्षत्र, स्वीडिश लेखिका का उपन्यास Dog star, यहाँ मैं रह नहीं सकता, वहाँ मैं जा नहीं सकता, प्रख्यात रंग निर्देशक बा. व. कारंत की जीवनी।

सम्पादन: रज़ा पर केन्द्रित कला वार्ता पत्रिका, स्वामीनाथन से संवाद, प्रख्यात चित्रकार, विचारक स्वामीनाथन के साक्षात्कार, अखिलेश पीयूष दईया से बातचीत, इस प्रकार, राजेश्वर त्रिवेदी से बातचीत, कलाकार का देखना, अभिषेक कश्यप से बातचीत।

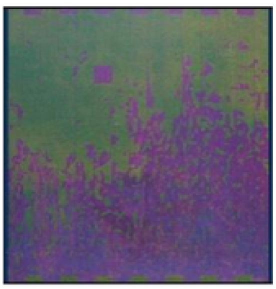

कविता

ओम निश्चल: ग़ज़लें

ओम निश्चल

omnishchal@gmail.com

1.

किसी को अपने इरादों का पता क्या देते
शजर थे खोखले शाख़ों का पता क्या देते

हम इस कदर थे गिरफ़्तार उसकी उल्फ़त में
कि उसकी क़ातिल अदाओं का पता क्या देते

अजीब दुनिया थी, था वक़्त भी बड़ा जालिम
हम अपने और परायों का पता क्या देते

नहीं पता था हमें कौन लिए जाता था
हम अपने डोली-कहारों का पता क्या देते

लगे थे आपसी रंजिश ही सब निभाने में
जफ़ापरस्त चराग़ों का पता क्या देते

हम अपने आप में डूबे थे इतने क़र्ज़ों में
हम उनको और अभावों का पता क्या देते

उन्हें ख़बर थी हमारे तमाम ठीहों की,
दुःखों को और ठिकानों का पता क्या देते।

2.

शजर ए उम्मीद उगाता हुआ-सा लगता है
मेरे भीतर कोई गाता हुआ-सा लगता है

इस तरह देता है आवाज़ कोई रह रह के
मुझको वो जैसे बुलाता हुआ-सा लगता है

यूँ लिपट जाता है चुपके से ख़यालात से वो
नर्म एहसास जगाता हुआ-सा लगता है

भूल जाती है डगर जब भी तज्रिबा मेरा
नेक रस्ता वो सुझाता हुआ-सा लगता है

बांहें फैलाए चले आते तख़य्युल जब भी
गोद में कोई झुलाता हुआ-सा लगता है

लग के सीने से कोई रोता है घण्टों `निश्चल`
कोई हमदर्द हँसाता हुआ-सा लगता है

कविता

मिलते रहा करो यार, कोना-कोना

डॉ. शैलजा सक्सेना

हिन्दी राइटर्स गिल्ड-कनाडा की सह-संस्थापिका/निदेशिका, लेखिका, संपादक, अनुवादक

मिलते रहा करो यार

हम अपने-अपने
ज़िरहबख़्तर पहने हुए मिले
जब मिले......

बोले तो शब्दों से ज़्यादा
आँखों से... भोंहों से!

काफ़ी पीने तक हमने जाँच डाली
एक दूसरे की आर्थिक स्थिति...
खड़ा कर लिया अर्थों का अपना एक समानांतर संसार

मन में कहा...
‘तो यह है असलियत तुम्हारी!’

अलग होते समय घड़ी देखी
कि ‘कितना समय बर्बाद हुआ।’

खींचकर लाई गई मुस्कान के साथ कहा,
"मिलते रहा करो यार!"

कोना-कोना

बचपन में खेलते थे
कोना-कोना
एक का पाना एक का खोना

चार पकड़े हुए अपने-अपने सुरक्षित कोने
बदलते जगह सवधानी से
कहीं पाँचवा खिलाड़ी न घुस आए
उनके कोने में

तब नहीं था भान
कि ज़िंदगी भी ऐसे ही दौड़ायेगी
एक सुरक्षित कोना ढूँढ़ने की दौड़ में
बीच चौराहे पर छोड़ जाएगी

ये संबध भी बहुत अलोने-सलोने हैं
व्यस्तताओं की दीवारों में
बने मुख्यतः आत्म-केंद्रित कोने हैं
ललचाते हैं
पास जाओ तो भागकर
फिर अपने कोने में घुस जाते हैं।

पाँचवाँ खिलाड़ी है स्त्री
जो अपना कोना खोकर भी
ज़िंदा रखती है यह खेल
सबसे बनाए रखती है मेल
अन्यथा तो सभी व्यस्त हैं
अपने-अपने कोने में
बहुत-कुछ खोकर भी भ्रमित
कुछ न खोने में।

कविता

नई पीढ़ी की माँएँ

आराधना झा श्रीवास्तव

संस्थापक अध्यक्ष– वसुन्धरा, रचनात्मक निदेशक– मैथिली सोसायटी (सिंगापुर)
vasundhara.singapore@gmail.com

क्या यह अंतिम पीढ़ी होगी
उन त्यागमूर्ति माँओं की
जिनके लिए लिखे गए
अब तक अनगिनत
काव्य और कहानियाँ
क्या अगली पीढ़ी की माँएँ
नहीं होंगी सम्मोहित
सुनकर अपनी स्तुति और
गौरवगाथाएँ?

संभव है...
नई पीढ़ी की माँओं को
नहीं स्वीकार्य होंगी ऐसी उपमाएँ
जिनके लिए उन्हें तपना होगा
त्याग की आँच पर और
करना होगा स्व को स्वाहा!

संभव है...
नई पीढ़ी की माँएँ
नहीं बनना चाहेंगी
सहनशीलता की देवी
नहीं धरेंगी कच्छप अवतार
नहीं उठाना चाहेंगी
गृहस्थ जीवन का भार।

संभव है...
नई पीढ़ी की माँएँ
पिता की प्रशंसा की ख़ातिर
नहीं छिपाएँगी संतान के दोष
अपने बटुए के बचे पैसों से
नहीं पूरी करेंगी
बच्चों के लाटसाहबी फ़रमान
विवाद की स्थिति में
सुलह का आग्रह लिए
नहीं बनेंगी शांतिदूत!

नई पीढ़ी की माँओं के
अनुवांशिकी के गुणसूत्रों में
गुँथे होंगे प्रतिकार के गुणधर्म
वे लड़ेंगी अपने अधिकार के लिए
अपनी पहचान के लिए
आत्मसम्मान के लिए
उन्हें अस्वीकार्य होगा
संबंध-सेतु की सलामती के लिए
अहम् के पैरों तले रौंदे जाना।

वे नहीं बहलेंगी
ममता के वार्षिक दिवस का
झुनझुना पाकर
नहीं पिघलेंगी
एक अनमनी सी माफ़ी
और वर्षों की उपेक्षा के बाद
स्वार्थपूरित झप्पी पाकर।

नई पीढ़ी की माँएँ
चाहेंगी साझेदारी
प्रशंसा में भी और
आलोचना में भी।
वे बाँटना चाहेंगी श्रेय
संतान की सफलता के साथ
उसकी विफलता का भी
संतान के गुणों के साथ
उसके अवगुणों का भी।

नई पीढ़ी की माँएँ नहीं बनेंगी
दुनिया के सबसे बड़े
अवैतनिक कामगारों का हिस्सा
उन्हें नहीं लुभाएगा
गृहशोभा या गृहनिर्मात्री के
छद्म अलंकृत पदों का प्रलोभन।
वे स्वयं निर्धारित करेंगी
अपना पद और भुगतान।

भावुकता को बीते दौर का बताकर
नई पीढ़ी की व्यावहारिक माँएँ
संतान की रसोई के
उपेक्षित कोने को सजाने के लिए
नहीं करेंगी व्यर्थ श्रम
रसोई की ताप में ख़ुद को गलाकर
नहीं भरना चाहेंगी
संतान के लिए सनेस की मोटरी।

वे नहीं माँगेंगी मन्नतें,
नहीं रखेंगी उपवास
नहीं चढ़ाएँगी त्याग के तराजू पर
अपने स्वास्थ्य का बटखरा
ताकि समृद्ध रहे

सुहाग और संतान का
स्वास्थ्य सूचकांक।

वे नहीं बाँधेंगी मनुहार से
कलाई पर रक्षा सूत्र
नहीं थोपेंगी अपनी संतान पर
अपनी माँ से मिला
परंपरा पोषित विश्वास।

आज के व्यस्त दौर की
निर्मोही, व्यावहारिक संतानें
कल जब बनेंगी माँएँ
तब संभव है गढ़ दें
माँ की अधिक मानवीय परिभाषा
जिसमें पीढ़ियों की ग्लानि
संताप, पश्चाताप और विलाप
सबका हिसाब बराबर हो जाए
देवत्व के ऊँचे पायदान से उतर
माँ संतान संग समतल पर आए।

पर यह भी तो संभव है...
माँ बनते ही उनके भीतर
भावनाओं का ऐसा ज्वार आए
जिसमें बह जाए
सारे बौद्धिक विमर्श, तर्क-वितर्क
और व्यावहारिकता के दावे
और बच जाए...
माँ और उसकी ममता
बच जाए...स्नेह की वह स्याही
जिससे लिखी जाती रहें
नई पीढ़ी की माँओं के लिए
उनकी संतति की ओर से
मर्मस्पर्शी अभिव्यक्तियाँ!

समय बदेलगा, पीढ़ियाँ बदलेंगी
पर माँ रहेगी वही
क्योंकि...
कुपुत्रो जायते
क्वचिदपि कुमाता न भवति!

कविता

निस्तब्धता, अस्तित्व की विरासत

श्रद्धा श्रीवास्तव
सहायक प्राध्यापिका

निस्तब्धता

अब मुझे
हर उत्तर
दुनिया से नहीं चाहिए।

मैंने सीखा है
कुछ सत्य
शब्दों में नहीं मिलते
वे रूह की शांत गहराइयों में
धीरे-धीरे
खुद जन्म लेते हैं।

अब मैं
अपने भीतर की आवाज़ को
पहचानने लगी हूँ,
जहाँ मौन भी
एक गहरा संवाद बन जाता है।

अस्तित्व की विरासत

कुछ विरासतें
शब्दों से नहीं
संघर्षों से मिलती हैं।

हमने टूटन में भी
अपना विस्तार खोजा
अंधेरों में भी
अपनी दिशा बचाए रखी।

हर अनुभव ने
हमें कमज़ोर नहीं
और अधिक गहरा बनाया।

अस्तित्व की असली पहचान
शोर से नहीं
उस शांत प्रकाश से होती है
जो भीतर
अडिग बना रहता है।

कहानी

यह जो है, प्रेम है

सुषमा मुनीन्द्र

प्रतिष्ठित उपन्यासकार और नाटककार
sushmamunindra@gmail.com

सम्पदा ने नहीं सोचा था फेसबुक पर रूमा मिलेगी। वह ऐसी आल्हादित हुई जैसे कब की बिछुड़ी रूमा अब मिली है। लगा समय बहुत बीत गया है पर उसके भीतर दो चोटी वाली कॉलेज छात्रा आज भी मौजूद है। सम्पदा ने पूछा, “पहचाना?”

रूमा का प्रति प्रश्न, “तुमने?”
“क्लास की पहली और आखिरी लैला को कैसे भूल सकती हूँ?”

“जबकि तुम लड़कों से ऐसे दूर रहती थी जैसे वे सड़े हुए टमाटर हों।”
“मुझे प्रेम शब्द अनैतिक लगता था।”
“इसीलिए लड़के तुम्हें छेड़ने के काबिल नहीं समझते थे।”

यह वह दौर था जब नैतिकता ऊँचे स्तर को छूती थी। प्रेम वर्जित मामला था क्योंकि नैतिकता को भंग करता था। प्रेम इशारों में बरामद होता था या प्रेम पत्र में। आधे – अधूरे प्रेम पर दास्तानें बन जाती थीं। प्रेम की सम्भावना बहुत कम बनती थी। सम्भावना का स्थल पड़ोस या सहशिक्षा वाले शैक्षणिक संस्थान माने जाते थे। वैसे यहां भी इक्का – दुक्का केस ही बनते थे। सम्पदा और रूमा कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से उत्तीर्ण होकर कस्बेनुमा शहर के इकलौते सहशिक्षा वाले महाविद्यालय में दाखिल हुईं। रूमा ने ऐसी जल्दबाजी में प्रेम किया जैसे प्रेम करने के लिए ही कॉलेज ज्वाइन किया है। विज्ञान प्रथम वर्ष की कक्षा में छात्र और छात्राओं का अनुपात अस्सी और बीस जैसा था। एक ओर की बेंच में छात्रायें, दूसरी ओर की बेंच में छात्र बैठते। बीस प्रतिशत होने के कारण छात्रायें शुरुआती तीन बेंच में समा जातीं। अस्सी प्रतिशत वाले छात्र अपनी ओर वाली बेंच में न समाते इसलिए कुछ छात्र, छात्राओं के पीछे वाली चौथी बेंच से लेकर अंतिम बेंच तक पाए जाते। इतनी तादाद में अंदाज न मिलता था कौन किसकी मुहब्बत में मुब्तिला है। वह तो अदा रखने वाली रूमा ने खुद खुलासा कर दिया – डगर चलते – चलते निहाल उस पर डोरे डाल रहा है।

कॉलेज पहुँचने के दो मार्ग थे। रूमा और निहाल का मार्ग एक था। सम्पदा साइकिल से अलग मार्ग से आती जाती थी। चूँकि कॉलेज पहुँचने का तय वक्त होता है अत: रूमा और निहाल अपनी अपनी साइकिल से थोड़ा आगे पीछे कॉलेज पहुँचते थे। अदा रखने वाली रूमा लहरा कर साइकिल चलाती थी। लहराती हुई जा रही थी कि अपनी माँ के साथ रोड क्रॉस कर रहा छोटा बालक उसकी साइकिल से टकरा कर भूलुंठित हो गया। रूमा साइकिल समेत गिर गई। साइकिल का हैण्डिल टेढ़ा हो गया। बालक की जननी हाँफने लगी, “तुम हमारे जिन्नी का घुटना तोड़ोगी, हम तुम्हारी साइकिल तोड़ेंगे। देख लो इसके घुटने से रक्त बह रहा है।”

रूमा की अनुनय – विनय व्यर्थ। पीछे से आ पहुँचा निहाल अपनी साइकिल से उतर गया। तेज़ व्यवहार दिखाते हुए जिन्नी की जननी को हुरपेटने लगा –

“बच्चे को सम्भाल कर रोड क्रॉस कराया करो। शुकर मनाओ कि बच्चा बच गया। चलो रक्षा।”

“हैण्डिल टेढ़ा हो गया है।”
निहाल ने हैण्डिल सीधा कर दिया। दोनों एक साथ कॉलेज पहुँचे। वह अद्भुत क्षण था। दोनों के भीतर प्रेम

का सूत्रपात हो गया। निहाल अपनी पहली बेंच छोड़ कर छात्राओं वाली चौथी बेंच पर बैठने लगा। रूमा पहली बेंच से तीसरी बेंच पर बैठने को लालायित हो गई।

सम्पदा ने मदद की, “रूमा, तुम मेरी जगह आ जाओ। मैं आगे बैठ जाऊँगी।”

रूमा और निहाल एक दूसरे की मामूली समीपता में सम्पूर्णता पाने लगे। उन दिनों प्रेम जैसा प्रेम करने के लिए स्थल का अभाव रहता था। पार्क वैलेन्टाइन डे नहीं मनाते थे। कल्पना नहीं थी एक वक्त आने को है जब सुजान लड़के लड़कियाँ कुछ साल के करार पर लिव इन रिलेशनशिप में रहेंगे। एक दूसरे की परख-पड़ताल कर विवाह करेंगे या नहीं भी करेंगे।

रूमा और निहाल की प्रेम कहानी चल पड़ी। सम्पदा ऐसे प्रकरण से निर्विकार रहती थी। छींट का कुर्ता, प्लेन सलवार और अनुशासित प्रहरी सा आधे बदन को ढांपता दुपट्टा पहनने वाली वह चेहरे से ऐसी सच्चरित्र लगती थी कि छात्रों ने मान लिया था इसे देखकर आंख मारना या सीटी बजाना अतिरंजना होगी। लेकिन अतिरंजना होने पर आए तो हो जाती है। प्रयोगशाला में प्रयोग करने के लिए सम्पदा को संकर्षण की पार्टनरशिप मिली। उस छोटे महाविद्यालय की उपकरणों की भारी कमी वाली प्रयोगशालायें छोटी थीं।

जीव विज्ञान प्रयोगशाला में विच्छेदन के लिए जंतु भी ठीक से उपलब्ध नहीं कराए जाते थे। दो विद्यार्थियों के बीच एक बिच्छू, मेढक या केंचुआ दिया जाता था। उपकरणों और जंतु की कमी के कारण विद्यार्थियों के अल्फाबेट्स के अनुसार तीन बैच बना दिये गये। बैच में दो दो विद्यार्थियों के समूह बने। एक समूह में दो छात्रायें या दो छात्र होते थे। रूमा और सम्पदा तीसरे बैच में थीं। समूह बन जाने के बाद सम्पदा और संकर्षण बचे। सर बोले “तुम दोनों एक ग्रुप में रहोगे।”

सम्पदा को कंडीशन क्रिटिकल लगी। बोली – “सर, मैं रूमा और राधा के ग्रुप में चली जाती हूँ। तीन मिलकर प्रैक्टिकल कर लेंगे।”

सर सहमत हो गए – “ठीक है। संकर्षण तुम रोहित और संजीव के ग्रुप में चले जाओ।”

संकर्षण सहमत नहीं हुआ – “सर, तीन के साथ दिक्कत होगी। सम्पदा तुम्हें क्या प्रॉब्लम है? प्रैक्टिकल ही तो करना है।”

सर सहमत हो गए “ठीक बात।”

संकर्षण के साथ प्रैक्टिकल करते हुए सम्पदा असहज रहती। रूमा ने मंत्र दिया –”सम्पदा मजे कर। थोड़ी मौज मस्ती हो तो पढ़ाई में खूब मन लगता है।”

“रूमा मैं इस कीटभक्षी के कारण ठीक से प्रैक्टिकल नहीं कर पाती हूँ। यह डिसेक्शन करने लगता है। मैं टापती हूँ। जैसे इसे ही पास होना है, मुझे नहीं।”

“निहाल सेकण्ड बैच में है। इसमें होता तो मजा आता। सुन सम्पदा। संकर्षण से इश्क कर ले। यह तुझे कीटभक्षी नहीं, राजकुमार लगेगा।”

“मैं बेवकूफी नहीं करूँगी।”

“इस उम्र में इश्क नहीं किया तो समझ ले भारी मिस्टेक की। यह उम्र लौट कर नहीं आएगी।”

“मैं बेवकूफी नहीं करूँगी।”

कुलीन सम्पदा संकर्षण को वक्र दृष्टि से देखती। संकर्षण उसे जज्बे से देखता। जज्बे से वाकिफ उसके सहपाठी मित्र ने मशवरा दिया – “निहाल ने रास्ते में रूमा को पटा लिया। संकर्षण तुम सम्पदा को पटाओ।”

“वह उपकरणों को इतना देखती है कि मुझे देखती ही नहीं।”

“एपरेटस छूने के बहाने उसे टच करो।”

“चिल्ला पड़ेगी बिच्छू ने डंक मारा। बिच्छू का डिसेक्शन करने में डरती है।”

“क्या पता वह भी तुम्हें पसंद करती हो।”

हौसले में संकर्षण। सम्पदा को कभी कनखी से देखता, कभी टकटकी लगाकर देखता। सम्पदा पलकें न उठाती, इसलिए संकर्षण की

गतिविधि को नहीं समझ पाती थी। गतिविधि छिपी न रह सकी। केमिस्ट्री लैब में वह ब्यूरेट, पिपेट, बीकर में अम्ल, क्षार के प्रयोग में दत्त थी। इधर संकर्षण चॉक से मेज पर उसका नाम लिख रहा था। सम्पदा को लगा बदनाम हो गई।

“यह क्या है संकर्षण?”
संकर्षण ने जेब से रूमाल निकाल कर नाम पोंछ दिया “कुछ नहीं।”

“मेरा नाम क्यों लिखा?”
“यूँ ही।”

“अब न लिखना। सर से शिकायत करूँगी।”

प्रेमी बनने का प्रयास करते हुए संकर्षण और प्रेम को अनैतिक मानते हुए सम्पदा प्रथम वर्ष से द्वितीय वर्ष में आ गई। दोनों की पार्टनरशिप खत्म हो गई। सम्पदा को द्वितीय वर्ष में तीन माह हो रहे थे तभी उसके बाबू जी का तबादला हो गया। इस दौरान संकर्षण दो बार मिला। वह माँ और दोनों छोटी बहनों के साथ मूवी देखने गई। इंटरवल में संकर्षण सस्पेन्स की तरह सामने आ गया। सम्पदा की ओर मूँगफली का बड़ा लिफाफा बढ़ाते हुए बोला – “गरम मूँगफली।”

सम्पदा को लगा बदनाम हो गई है। कुछ सूझ न पड़ा। माँ से बोली – “माँ, यह संकर्षण है। मेरा क्लास फेलो।” अल्पशिक्षित माँ ने न प्रेमी बनाया था, न पति से प्रेम पाया। निश्छल भाव में पूछा – “मूँगफली के कितने पैसे हुए बेटा?”

“खाइए आंटी।”

वह माँ को लिफाफा पकड़ा कर अपनी सीट पर चला गया। छोटी बहन ने सम्पदा से रहस्य कहा “दीदी, इस लड़के को मैंने दो-चार बार अपने घर के पास देखा है।”

“किसी और को देखा होगा।”

“यही है दीदी। तुम्हारा पीछा तो नहीं करता?”

“चुप रहो।”

सम्पदा नहीं सोचती थी संकर्षण उसे चेज करता है। तबादले पर जाने के दो दिन पहले साइकिल से सहेली के घर जा रही थी। पीछे से तेज साइकिल चलाता हुआ संकर्षण पहुँच गया – “सम्पदा कॉलेज क्यों नहीं आती?”

“तबादला हो गया है। टी.सी. निकलवा ली है।”

“बताया नहीं।”

“परसों जा रही हूँ।” कह कर संकर्षण को चकमा देने के लिए सम्पदा आगे जो भी गली दिखी उसमें मुड़ गई। फिर सहेली के घर पहुँचते हुए बहुत भटकी।

नई जगह आकर सम्पदा ने खुद को अनिर्वचनीय स्थिति में पाया। गुस्ताख उम्र उसे समझा रही थी अपने अनाड़ीपन या सख्त अनुशासन बनाए रखने वाले बाबू जी के भय से तुमने संकर्षण को महत्व नहीं दिया पर वह कुछ कहना चाहता था। मेज पर नाम लिखने, चेज करने के मायने होते हैं। सम्पदा को लगने लगा संकर्षण अहसास की तरह साथ चला आया है। एक विचार... एक सपना – एक जादू बनता जा रहा है। यहां नहीं है, फिर भी है। दिल में है, दिमाग में है, नींद में है, दर्द में है, उदासियों में है। इतना समीप है जितना प्रयोगशाला में नहीं था। अनिर्वचनीय स्थिति।

सम्पदा उदास है... अब कोरें बह रही हैं... खुद पर गुस्सा आ रहा है... करुणा हो रही है...। रुलाई, क्षोभ, बेचैनी...। रात है... नींद नहीं आ रही... अब आ गई है...सपने...सपने में संकर्षण। उसका नाम लिख रहा है... मूँगफली दे रहा है... चेज कर रहा है। और अब बुरा सपना।... उसे ढूँढ़ते हुए यहां चला आया है। बाबू जी उसे पीट रहे हैं हम विप्र – कुलोद्भव, तुम बनिया... सम्पदा से प्रेम करने की हिम्मत कैसे की? आकुल सम्पदा जाग गई। माथे पर पसीना... तेज सांसें... दहलता दिल...। साफ लग रहा है वह नहीं रही जो अब तक थी। बदल गई है। खो गई है। भटक गई है। किसी ने ठग लिया है। झांसा दिया है।

सम्पदा प्रेम में है। अब किसी से प्रीत नहीं जोड़ेगी। संकर्षण की जगह किसी को नहीं देगी।

सचमुच किसी से प्रीत नहीं जोड़ पाई।

पति माणिक को उस तरह प्रेम नहीं कर सकी जिस तरह करना चाहिए।

नायब तहसीलदार से प्रोन्नत होते हुए एस.डी.एम. के पद पर पहुँचे माणिक शालीन हैं। उन्हें आरम्भ में असुविधा हुई थी। वे नवदम्पति का रोमांच चाहते थे। यह पूरी तरह अभिव्यक्ति नहीं देती थी। यह जरूर रहा कि आम दम्पति की तरह दोनों ने एक दूसरे की उपस्थिति का अभ्यास कर लिया। तबादले के क्रम में माणिक का तबादला उस शहर में हुआ जहां सम्पदा प्रथम वर्ष में पढ़ती थी। माणिक की भलमनसाहत "सम्पदा यहां तुम पढ़ी हो। चलो तुम्हारा कॉलेज देखें।"

तबीयत से तैयार होकर वह इस तरह गई मानो प्रयोगशाला में संकर्षण मिलेगा। चौगिर्द देखते हुए दंग थी – कॉलेज की छात्रा उसके भीतर आज भी मौजूद है पर बाहर सब कुछ कितना बदल गया है। शहर, रास्ता, कॉलेज सब कुछ बदला हुआ प्रतीत हुआ। कॉलेज परिसर में एक भवन और बन गया है। वहां भी क्लासेस चलती होंगी। सम्पदा परिसर के प्रमुख प्रवेश द्वार पर ठहर गई। माणिक बोले "एक राउण्ड लेते हैं।"

लगा परिसर के भीतर गई तो रो देगी। "नहीं। तब से कितने बैच पढ़ कर निकल गये होंगे। कितना वक्त तो बीत गया।"

"वक्त किसी के लिए नहीं ठहरता। उसे बीतना ही है।"

वक्त बीतने के लिए ही है। बीतता रहा। तबादले होते रहे। बेटी का विवाह हो गया। बेटा आई.आई.टी. के लिए खड़गपुर चला गया। अपना पुराना लैपटॉप उसे दे गया – "माँ इंटरनेट में सब कुछ मिलता है। ढूँढ़ना। तुम्हारे पुराने फ्रेण्ड्स मिलेंगे। तुम्हें अकेलापन नहीं लगेगा।"

पुराने फ्रेण्ड्स? संकर्षण? संकर्षण को ढूँढ़ रही थी। रूमा मिल गई। जी चाहता था ताबड़तोड़ पूछे – रूमा, संकर्षण का कुछ अता पता है? वह दिल में बस गया है। मुझे लगता है मेरे जाने के बाद उदास हुआ होगा। हताश हुआ होगा। संकर्षण का कुछ सूत्र मिलेगा सोच कर वह रूमा से मोबाइल पर बात करने लगी – "रूमा, इन दिनों क्या कर रही हो?"

"डॉक्टरी। निहाल के नोट्स पढ़ कर मैं उसकी तरह ब्रिलियेंट बन गई थी। उसने पहले अटैम्प्ट में पी.एम.टी. क्लियर कर लिया था। मैं दूसरे अटैम्प्ट में कर सकी।"

"तुम्हारे मम्मी-पापा कैसे हैं?"

"तब इंटरकास्ट मैरिज का मतलब था एक आग का दरिया है, डूब कर जाना है। निहाल से शादी करने के कारण पापा ने मुझे किक आउट कर दिया।"

"क्या कह रही हो?"

"तब प्रेम करने वाले इतना जलील किए जाते थे, अब देख लो लड़के–लड़कियाँ लिव इन में रहते हैं। तुम सुनाओ सम्पदा। कैसा चल रहा है?"

"ठीक चल रहा है।"

"तुम्हें कीटभक्षी की याद है?"

"कीटभक्षी?"

"तुम दोनों एक साथ प्रैक्टिकल करते थे। संकर्षण बड़ा बेवकूफ था।"

"क्या हुआ?"

"निहाल बताता था लड़के तुम्हारे लिए कहते थे इतना रिजर्व रहती है कि सोलहवीं सदी की लगती है। संकर्षण जैसे बेवकूफ को मुहब्बत करने के लिए तुम मिली।"

"मैं?"

"निहाल बताता था, लड़के संकर्षण की खूब खिल्ली उड़ाते थे कि मुहब्बत की तो सम्पदा से। तुम चली गई वह दिनों तक फरहाद बना रहा। बड़ा बेवकूफ था।"

अनिर्वचनीय स्थिति में सम्पदा।

सोचा रूमा से कहे – मैंने प्यार नहीं किया फिर भी किया। अपने इस अबूझ प्रेम को आज भी भरपूर जी रही हूँ। मेरे भीतर हमेशा एक मधुर अहसास बना रहता है। उसे खामोश पाकर रूमा को लगा उसने गलत प्रसंग उठा दिया है।

"हैलो... सम्पदा...।"

"सुन रही हूँ।"

"सॉरी, जानती हूँ तुम संकर्षण को नापसंद करती थी।"

"आजकल कहां है?"

"जहां भी होगा पछता रहा होगा।"

"क्यों?"

"प्रेम करने वाले पछताते हैं।"

"तुम पछता रही हो?"

"प्रेम बेवकूफी है सम्पदा। जो प्रेमी शादी नहीं कर पाते, पछताते हैं कि शादी नहीं कर पाये। जो कर लेते हैं, शादी करने पर पछताते हैं।"

"रूमा, तुम पछता रही हो?"

"बहुत। जिससे प्रेम करो उससे शादी न करो।"
"मतलब?"

"प्रेमी, पति बन जाए तो न प्यार बचता है न खुमार।"
"लाइफ बोगस?"

"ठीक कहा। निहाल को लेकर मैं कितनी बेचैन रहती थी। उससे शादी करके बेचैनी खत्म हो गई। बेचैनी में रहना अच्छा लगता था। मीठा सा अहसास बना रहता था। वह अहसास खो गया।"

"निहाल ने दिल तोड़ दिया क्या?"

"मैं आज भी निहाल को उसके परिवार के साथ जोड़ कर देखने की आदत नहीं डाल पाई हूँ। उसे उसकी फैमिली से कनेक्ट करके देखती हूँ तो लगता है वह निहाल नहीं है जिसे मैं जानती थी। तब वह मुझ पर फोकस करता था। वही बात करता था जो मुझे अच्छी लगती थी। मुँह फाड़ कर कहता था रूमा तुम मिल जाओ फिर मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं मिल गई तो कहता है मैंने अपने पैरेन्ट्स के खिलाफ जाकर तुमसे शादी की है। उन्हें खुश रखो। निहाल की तीन छोटी बहनों की शादी करने में मेरी कमाई लुट गई।"

"रूमा तुम लव मैरिज के लिए नहीं, कमाई लुट जाने के लिए पछता रही हो।"

"प्रेमी से शादी करके पछता रही हूँ। शादी के बाद प्रेमी, प्रेमी नहीं रहता। पति बन जाता है।"

"पति को पति की तरह देखो। प्रेमी की तरह क्यों देखती हो?"

"सम्पदा कैसे समझाऊँ? मैंने निहाल को बेस्ट रूप में देखा था।"
"वह बेस्ट नहीं रहा?"

"मैंने उसे बनियान, पाजामे में देखा तो लगा क्या मैं इसी पर फिदा हुई थी? निहाल कितने अच्छे कपड़े पहन कर कॉलेज आता था। कपड़ों का कितना प्रभाव पड़ता है।"

"तब तुम दोनों थोड़े समय के लिए मिलते थे। अब साथ में रहते हो। निहाल चौबीस घण्टे सज–धज कर, राजा बाबू बन कर नहीं रहेगा। तुम भी नहीं रहती होगी। वह भी तुम्हारी कमियां ढूँढ़ता होगा।"

"कमियां ढूँढ़ने में मास्टर है। मैं जो भी कहती हूँ उसे गलत लगता है। यूँ समझो हम एक-दूसरे की इमेज गिराने में लगे रहते हैं।"

"मतलब?"

"बहुत कुछ करते हैं, बस प्रेम नहीं करते।"

"रूमा, तुम मुझे शॉक दे रही हो।"

"सम्पदा ठीक हुआ जो तुमने प्रेम नहीं किया। नहीं किया इसलिए तुम्हें पति के साथ एडजस्टमेंट में दिक्कत नहीं हुई होगी। जो मिला, जैसा मिला तुमने एक्सेप्ट कर लिया होगा।"

अनिर्वचनीय स्थिति में सम्पदा। ठीक अभी तिलिस्म टूटा। अब तक भुलावे में थी, फरेब में थी, झांसे में थी। किसे धन्यवाद दे? सरकार को कि ठीक वक्त पर बाबू जी का तबादला कर दिया? बाबू जी की सख्ती को? माणिक को जिसने उसकी बेरुखी को लेकर पूछताछ नहीं की? अपने अनाड़ीपन को कि संकर्षण से बचने के लिए गलत गली पकड़ ली थी? या रूमा को जिसने भूलभुलैया के मायने समझा दिए? अनिर्वचनीय स्थिति में सम्पदा। लज्जा आई। ग्लानि हुई। हैरानी हुई। जिस प्रेम की पुष्टि नहीं, प्रमाण नहीं उस प्रेम में इतने बरस अख्तियार बना कर रखना बेवकूफी नहीं लगी। वक्त बदल गया... कच्ची उम्र का कच्चापन चला गया... कच्चेपन को जीना... अरसा बिता देना असल जीवन को खारिज करने की तरह नहीं लगा। ओह... ओह ..।

दौरे से लौटे माणिक को सम्पदा ने पहली बार इस तरह देखा जिसे देखने जैसा देखना कहते हैं। आदर से देखा... आभार से देखा... प्यार से देखा... लगा यह जो है, प्रेम है।

कहानी

नेटवर्क के बहाने

बबिता कुमावत

सहायक प्रोफेसर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजस्थान

bkumawatbarni13@gmail.com

शाम का धुँधलका धीरे-धीरे शहर पर उतर रहा था।

मोबाइल स्क्रीन पर 'नो नेटवर्क' का सूखा-सा वाक्य चमक रहा था। जैसे किसी ने संवाद के सारे दरवाज़े बंद कर दिए हों। आरव ने झुँझलाकर फोन मेज़ पर पटक दिया। यह तीसरी बार था जब उसकी मीटिंग 'नेटवर्क इश्यू' के बहाने स्थगित हुई थी। लेकिन क्या सचमुच यह केवल नेटवर्क का मामला था? या कुछ और भी था - जो अदृश्य था, अनकहा, और कहीं भीतर बहुत गहराई में उलझा हुआ?

आरव एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में काम करता था। उसकी ज़िंदगी ईमेल, कॉल, और वीडियो कॉन्फ्रेंस के बीच सिमट गई थी। हर संबंध 'ऑनलाइन' था - परंतु हर भावना 'ऑफ़लाइन'।

उस दिन, जब नेटवर्क बार-बार गायब हो रहा था, उसने पहली बार खिड़की खोली। बाहर बारिश हो रही थी। बूंदों की टप-टप में एक अजीब-सी सच्चाई थी - जिसे कोई नेटवर्क बाधित नहीं कर सकता था। तभी दरवाज़े पर दस्तक हुई।

"भैया, आपका वाई-फ़ाई काम नहीं कर रहा क्या?" सामने खड़ा था पंद्रह-सोलह साल का लड़का सुमित, जो उसी बिल्डिंग में अख़बार बाँटता था।

"हाँ, नहीं चल रहा," आरव ने अनमने भाव से कहा।

"मैं देख दूँ?" उसने सहजता से पूछा। आरव ने पहली बार गौर से उसे देखा, उसकी आँखों में आत्मविश्वास था, और चेहरे पर एक अनगढ़ मुस्कान।

"तुम्हें आता है?"

"हाँ, थोड़ा-बहुत... नेटवर्क का काम करता हूँ।"

सुमित ने राउटर के तारों को इधर-उधर किया, सेटिंग्स देखीं, और कुछ ही मिनटों में इंटरनेट वापस आ गया।

"हो गया," उसने मुस्कुराते हुए कहा।

"अरे वाह!" आरव चकित था।

"तुम तो बड़े एक्सपर्ट हो!"

"बस, सीख लिया... ज़रूरत थी।"

"ज़रूरत?"

"हाँ," सुमित ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा, "माँ गाँव में रहती हैं... उनसे बात करने के लिए। वहाँ नेटवर्क ठीक नहीं रहता, तो यहाँ सब ठीक रखना पड़ता है।"

आरव कुछ क्षणों के लिए निःशब्द हो गया। उसे याद आया, उसने कब आख़िरी बार अपने माता-पिता से बिना किसी काम के बात की थी? शायद महीनों पहले... या उससे भी पहले। उसका नेटवर्क हमेशा 'फुल' रहता था लेकिन संबंधों की सिग्नल स्ट्रेंथ शून्य के आसपास भटकती रहती थी।

"तुम रोज़ अख़बार बाँटते हो?"

"हाँ, सुबह। फिर दिन में काम... और रात को पढ़ाई।"

"थक नहीं जाते?"

"थकान तो होती है, पर बात कर लेते हैं तो सब ठीक हो जाता है," सुमित ने सहजता से कहा।

"किससे?"

"माँ से... और कभी-कभी खुद से भी।"

यह उत्तर आरव के भीतर कहीं गूंज गया। उसने महसूस किया वह वर्षों से खुद से बात नहीं कर पाया था। हर संवाद 'नेटवर्क' के सहारे था लेकिन आत्मसंवाद का कोई सिग्नल नहीं था।

"चाय पियोगे?" आरव ने अचानक पूछा।

"आपके पास समय है?" सुमित चौंका।

यह प्रश्न जैसे आरव के भीतर एक आईना बन गया।

"हाँ," उसने धीमे स्वर में कहा, "आज नेटवर्क का बहाना है।"

दोनों खिड़की के पास बैठ गए। बाहर बारिश अब भी जारी थी।

"भैया," सुमित ने चाय का घूँट लेते हुए कहा, "आप लोग बड़े अजीब होते हैं। सब कुछ है, फोन, इंटरनेट, पैसे... फिर भी बात नहीं करते।"
"और तुम?"

"हमारे पास कुछ नहीं होता, तो हम बात कर लेते हैं।" यह वाक्य किसी गहरे सत्य की तरह कमरे में ठहर गया। आरव ने अपना फ़ोन उठाया।

स्क्रीन पर फिर से 'नो नेटवर्क' का संदेश आ गया था। लेकिन इस बार वह मुस्कुरा रहा था। उसने फोन को साइड में रख दिया और कहा, "चलो, आज बिना नेटवर्क के ही बात करते हैं।"

सुमित हँस पड़ा, "भैया, असली नेटवर्क तो यही है।"

उस रात, पहली बार, आरव ने महसूस किया कि 'नेटवर्क' केवल सिग्नल का खेल नहीं है, यह संबंधों का, संवेदनाओं का, और संवाद का अदृश्य जाल है, जिसमें सबसे बड़ा बहाना हम खुद बन जाते हैं। और शायद जब नेटवर्क चला जाता है, तभी जीवन का असली कनेक्शन शुरू होता है।

कहानी

डिमेंशिया

अनवर सुहैल

लेखक, संपादक, ब्लॉगर
sanketpatrika@gmail.com

ड्यूटी से लौटा है वसीम।
बाऊण्ड्री-वाल से दीखता घर का बरामदे वाला हिस्सा खाली है। अमूमन अब्बा इस वक़्त बरामदे में कुर्सी पर बैठकर अख़बार पढ़ते मिल जाते हैं। कभी मौसम खराब रहा या फिर तबीयत नरम-गरम हो तो बात अलग है। लगता है आज अब्बा सो चुके हैं। वसीम ने हाथ घड़ी पर निगाह डाली। अरे, ठीक ही तो है। शाम के साढ़े चार बज रहे हैं। कितनी देर इंतज़ार करते अब्बा। वैसे वसीम के काम से लौट आने के बाद अब्बा इत्मीनान से अपने कमरे में जाकर सो जाते हैं। एक सुकून भरी नींद।

वसीम उन्हें देखकर सलाम करता है तो अब्बा उसे किसी बच्चे सा रिपोर्ट देने लगते हैं, "खाना खा लिया हूं। बहू ने दवा भी दे दी थी। अब सोने जा रहा हूँ।"

मोटरसाइकिल को स्टैंड पर टिकाकर, वसीम ने डिक्की से टिफिन निकाला। आहट सुनकर पत्नी सलमा बाहर दरवाज़े तक आ गई, "आज ज्यादा

देर हो गई?"

"जल्दी निकल आता खदान से, लेकिन एक प्राब्लम आ गई तो फंसता चला गया।"

फिर वसीम ने पूछा, "अब्बा?"

"आज ज्यादा देर नहीं बैठे हैं। दस बजे चाय-बिस्किट दिया था। फिर डेढ़ बजे जगाकर खाना खिला दिया। आज जाने कितनी नींद लगी है उन्हें। और हां, आज गुमसुम भी बहुत हैं। कह रहे थे, इतना दिन नहीं जीना चाहिए किसी को।"

वसीम चिंतित सा अब्बा के कमरे में गया।

देखा कि लो-वाट एलईडी की मद्धम रौशनी में अब्बा कम्बल ताने सोए हुए हैं। वसीम के आने की आहट से पहले जाग जाते थे अब्बा। लेकिन आज तो जैसे बेहोशी की नींद में हैं वे।

वसीम ने उनके लेटे बदन को गौर से देखा। सांस लेने की कोई आवाज़ नहीं थी, कम्बल भी एकदम स्थिर सा था। वसीम का दिल धक कर गया। वह जाने कितने पल अब्बा के स्थिर बदन को निहारता रहा। सलमा किचन में जा रही थी लेकिन कोई आहट न पाकर वह भी अब्बा के कमरे में आ गई।

वसीम के उड़े हुए होश देख सलमा ने आवाज़ लगाई, "अब्बा जी।"

अब्बा ने करवट बदली। वसीम के जी में जी आया। उसने अब्बा को सलाम किया।

अब्बा ने सलाम का जवाब दिया और बदस्तूर बताने लगे, "खाना खा लिया है। बहू ने दवा दे दी थी। खा लिया हूं।"

वसीम ने उनका माथा छुआ, "बुखार तो नहीं लग रहा है?"

"क्या मालूम! देख लो।"

सामान्य था माथे का ताप। वसीम ने अब्बा से कहा, "ठीक है आराम कीजिए। मैं नहा-खा लूं तो फिर आपके लिए आयुर्वेदिक चाय बनाता हूं।"

अदरक, लौंग-इलाइची, गोल-मिर्च और दालचीनी की लाल चाय अब्बा को बहुत पसंद है। पीकर कहते हैं, "तरावट आ गई। अब कुछ देर अच्छा लगेगा।"

फिर अचानक दार्शनिक अंदाज़ में आ गए, "जितने दिनों का चोला हो, उतने दिन तो सबर करना ही होगा!" अब्बा ऐसे नकारात्मक बात करने वाले इंसान नहीं थे। ऐसी ही किसी अनहोनी से उपजे डर की अनुभूति वसीम को हर सुबह होती है जब अब्बा को जगाने के लिए उनके कमरे में जाता है। अब्बा बेसुध सोए रहते हैं। कोई हलचल नहीं दीखती तो वसीम डर जाता है। वह आहिस्ता से पुकारता है, "अब्बाजी!" अब्बा के सोए हुए जिस्म में हरकत होती है और वसीम के जी में जी आता है।

कितने चैतन्य हुआ करते थे अब्बा। अम्मी की मौत के बाद धीरे-धीरे उनकी सेहत भी खराब रहने लगी है। अम्मी को अब याद नहीं करते लेकिन क्या वह वाकई अम्मी को भूल चुके हैं या उनका जिक्र करके और लोगों को मायूस नहीं करना चाहते हों। उन्हें अपना वजूद भी धीरे-धीरे इक बोझ सा लगने लगा है। उन्हें किसी का एहसान लेना एकदम पसंद नहीं बल्कि वे चाहते हैं कि वह खुद हर किसी की मदद करते रहें। अब उनसे यह सम्भव नहीं है।

जब उत्तराखण्ड की केदारनाथ त्रासदी में अब्बा के मित्र बनारसीदास की पत्नी और बेटी-दामाद लापता हो गए थे, तब बनारसीदास को ढाढ़स बंधाने में अब्बा का रोल अहम था। बनारसीदास चाचा के परिवार का फिर कभी पता नहीं चल पाया। यह मान लिया गया कि उस त्रासदी ने लील लिया होगा उन्हें। बनारसीदास चाचा गुमसुम से रहने लगे थे। अब्बा उनके घर जा-जाकर उन्हें सांत्वना देते। उनके घर का नल और बिजली का बिल वे स्वयं पटाने लगे थे। धीरे-धीरे समय समय के साथ बनारसीदास चाचा के दिल के ज़ख़्म भरने लगे। वे सामान्य होने लगे। अब्बा की बातों का मरहम उनके जीवन में तब्दीली लाने लगा। एक दिन उन्होंने नगर के चौक में महीनों से बंद अपनी दुकान खोल ली। जाने कितने लोगों के प्रेरणा-स्रोत रहे अब्बा उम्र के इस दौर में खुद कैसी भूल-भुलैया में फंस गए हैं। उसे वे स्वयं समझ नहीं पाते थे। विस्मृति का रोग शायद ईश्वर का विधान होता है।

वसीम को एक शेर याद हो आया, "बस एक भूलने का हुनर ही तो नहीं आता / वरना भूलना तो हम भी बहुत कुछ चाहते हैं।" लेकिन जीवन और शायरी में कौन सामंजस्य स्थापित करे? अब्बा के बुढापे ने जैसे वसीम के जीवन में कई नए अध्याय खोल दिए हैं। वसीम सोचता है कि यदि वृद्धावस्था में विस्मृति-दंश न हो तो इंसान दुनिया भर की यादों के झुरमुट में भटकता रहे। यानी बुढ़ापे में विस्मृति कोई रोग नहीं बल्कि वरदान होता है। स्मृति-दंश का शिकार बुढ़ापा यदि सेवा-टहल से वंचित रह जाए तो कितना भयावह होता होगा।

बेशक, अब्बा की उम्र के लोगों को निराश्रित नहीं रखना चाहिए। ऐसी उम्र में जब उन्हें यह भी याद न हो कि वे कहां रह रहे हैं। कई बार तो वसीम को बताना पड़ता है कि वह वसीम है उनका बड़ा बेटा। अपनी बड़ी बेटी को जब वसीम ने बताया कि तुम्हारे दादाजान को भूल जाने की बीमारी है तो उसने व्हाट्सऐप से डिमेंशिया रोग से ग्रसित एक वृद्धा की क्लिपिंग भेजी। वह वृद्धा अपने बेटे को भूल गई है और बेटा इस बात से कितना रोता है कि मां उसे तक भूल गई है।

एक दिन अब्बा अपने नकली दांतों का सेट अपने पोपले मुंह में फिट करने का तरीका ही भूल गए। दांतों को उठाकर पहले वे बड़ी आसानी से मुंह के अन्दर फिट कर लेते थे। उस दिन जाने क्या हुआ कि कभी नीचे लगाने वाला हिस्सा ऊपर लगा लेते और कभी ऊपर लगाने वाला हिस्सा नीचे। और जब दांत फिट न बैठा तो रोने लगे। वसीम को अब्बा के रोने की आवाज़ आई तो दौड़े और थोड़ी देर में माजरा समझ में आ गया। वसीम ने अब्बा की थाली से रोटी उठाई और दाल के कटोरे में उसे टुकड़े-टुकड़े करके डाल दिया। फिर अपने हाथों से मसल दिया और एक चम्मच लाकर उन्हें दी। अब अब्बा चम्मच की सहायता से उस दाल में मसली हुई रोटियों को खाने लगे और फिर उन्हें मज़ा आने लगा। उस दिन के बाद से उन्होंने उन दांतों को लगाना ही बंद कर दिया।

वसीम ने सलमा से बातें कीं। रास्ता यह निकाला गया कि अब से अब्बा को रोटियां दूध या दाल में मसलकर खिलाई जाएं और एक टाइम मूंग की खिचड़ी परोसी जाए। इसके लिए सलमा रात में रोटियां ज्यादा पका लिया करती। सुबह रोटी को पानी में तोड़कर मुलायम होने के लिए छोड़ दिया जाता। फिर रोटी को मसलकर उसे दूध के साथ पकाया जाता। हल्की चीनी, हार्लिक्स और इलाइची पाउडर डालकर उस लेईनुमा रोटी को अब्बा को दो बार दिया जाता। अब्बा बड़े शौक से उसे खाते। सलमा बड़ी खिदमतगार है। वह बचपन से एक संयुक्त परिवार का हिस्सा रही है और उसने परिवार के बहुत सारे बुजुर्गों को देखा है। बहुत से बुजुर्गों के अंतिम समय की साक्षी भी रही है। इसलिए वह वसीम की हरकतों पर हंसती है और कहती है, "आप कभी किसी बुजुर्ग के साथ पहले कभी नहीं रहे हैं न! इसलिए ऐसी हरकतें किया करते हैं।" वसीम सलमा की बात का बुरा नहीं मानता। वह सिर्फ इतना ही कहता है, "हम भी तो कभी इस तरह बूढ़े होंगे तब?"

"क्या होगा? काहे इतना सोचते हैं। अल्लाह पाक हर किसी के साथ है। हमारे साथ भी उसकी रहमतें रहेंगी न!" वसीम कुछ नहीं कहता बल्कि एक गहरी सांस भरता है।

अब्बा चाहते हैं कि लोग उनके साथ बैठें और उनकी याददाश्त के अनुसार उभर आए किस्सों को गौर से सुनें किन्तु किसी के पास आजकल समय कहां है। वसीम उन्हें समझाता है कि आप चुपचाप आराम करें। सारी जिन्दगी तो आपने भाग-दौड़ की है। अब अल्लाह पाक यही चाहते हैं कि आप खूब आराम करें। भूख लगे तो बहू को आवाज़ देकर खाना मांग लें। आपके लिए कुछ न कुछ घर में तैयार रहता है।

अब वसीम उन्हें "अल्ला-अल्ला" करने की सलाह नहीं देता क्योंकि इस डिमेंशिया ने अब्बा को स्मृति-दंश का रोगी बना दिया है, उन्हें न दिन तारीख याद रहती है और न ही माह-साल। उन्हें यह भी याद नहीं रहता कि इस समय वे कहाँ रह रहे हैं। अक्सर पूछते हैं कि यह मेरा मकान है न! शुरू-शुरू में सलमा उन्हें समझाया करती कि यह आपके बेटे का सरकारी क्वार्टर है। फिर बाद में उसने भी कहना शुरू कर दिया कि अब्बाजी यह आपका मकान है।

ठेकेदार के मज़दूर रिपेयर के लिए

दिन क्वार्टर में आये। किचन का स्लैब टूट गया था और बाथरूम का दरवाज़ा जाम हो गया था। कई दिनों से सिविल विभाग में शिकायत की थी वसीम ने सो उस दिन मज़दूर लगाये गए थे काम पर। सलमा ने बताया कि मजदूरों की खटर-खुटुर से अब्बा की नींद खुल गई। सलमा मजदूरों को काम समझा रही थी कि अब्बा लाठी टेकते आ गए और सलमा से बोले, “बहू! मैंने पैसे तो बैंक से निकाले नहीं हैं। इन मज़दूरों की मज़दूरी कैसे दे पाऊंगा?” यह कहकर वे रोने लगे। सलमा घबरा गई थी। फिर उसने समझाया कि यह सरकारी आवास है उनका अपना घर नहीं है और यहाँ जो भी काम होता है उसका भुगतान सरकार करती है। हम लोगों को मजदूरी नहीं देनी होगी। शाम जब वसीम ड्यूटी से लौटा तो आदतन अब्बा के कमरे में गया। अब्बा गहरी नींद में थे। वसीम ने आवाज़ दी तो जागे और अचानक बोल पड़े, “मैंने इस मकान के कागज़ात तुम्हारे नाम कर दिए हैं। तुम्हारा नाम करीम है न?”

वसीम मुस्कुरा उठा। करीम उसके छोटे भाई का नाम है।

उसने कहा, “मेरा नाम वसीम है। आपका बड़ा बेटा हूँ मैं!”

तब अब्बा के माथे पर चिंता की लकीरें आ गईं, “अल्लाह! बड़ी गलती हो गई।”

फिर वे बिस्तर से उठने की कोशिश करने लगे और वसीम से बोले, “चलो तो जमुनादास वकील साहब के पास। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम्हारा नाम डलवा देता हूँ।”

वसीम ने अब्बा को उठने से मना किया और बताया, “जमुनादास चाचा को मरे तो कई साल हो गये अब्बाजी। आप एकदम चिंता नहीं करें बल्कि आराम करें। खाना खाया न?” अब्बा ने याद करने की कोशिश की और फिर टेबिल पर रखे जूठे बर्तनों को देख कर बोले, “शायद बहू ने खाना दिया था या नहीं दिया था। मुझे कुछ होश नहीं रहता है।”

“आपने खाना खा लिया है। अब शाम हो रही है। मैं भी खाना खा लूँ फिर आपको चाय दूंगा।”

“अच्छा अभी शाम है?”

“जी!”

वसीम अब्बाजी को पूरी इज्ज़त देता है। ये वही शख्सियत हैं जिनके डर से सभी की पिद्दी कांपती थी। अब्बा के पैरों की आहट सुनकर घर में सन्नाटा पसर जाता था। बच्चे थे तब पिनड्राप साइलेंस का मतलब नहीं जानते थे लेकिन होश सँभालने पर पटेल सर की क्लास के समय उनकी आतंकित उपस्थिति से जो सन्नाटा पसरता था उसे ही पिन-ड्राप साइलेंस कहा जाता है, तब उसने जाना था। वरना वसीम अपने घर में इस सन्नाटे को जाने कब से महसूस करता आ रहा था। अब्बा से घर और बाहर के लोग डरा करते थे। अब्बा का जीवन सादगी भरा अनुशासित जीवन रहा है। शिक्षक अब्बाजी का तब नगर में बड़ा सम्मान हुआ करता था। उस जमाने में शिक्षक होना कोई पेशा नहीं बल्कि एक धर्म की तरह समझा जाता था। पैरेंट्स बच्चों को सौंपते हुए कहते थे, “गुरुजी, बच्चा आपको सौंप रहे हैं। इस बच्चे की हड्डी हमारी और चमड़ी आपकी।” आज के ज़माने में कोई शिक्षक बच्चे को मार के तो देखे। पुलिस-मुकदमा में ऐसा फंसेगा कि अनुशासन की सारा नशा उतर जाएगा।

अब्बा हर समय गंभीर बने रहा करते थे। स्कूल के अलावा मस्जिद जाते थे। जितना देर वे घर में न होते बच्चों को आज़ादी मिली रहती और जैसे ही उनके कदमों की आहट सुनाई देती घर में इमरजेंसी लग जाया करती थी। अब्बा से अम्मी भी डरती थीं। बस दादी उन्हें डांट सकती थीं जब वे अपनी ही किसी संतान को बेतरीके पीट रहे होते। वही कठोर अनुशासन के मुरीद अब्बा अब कितने अशक्त और कितने मजबूर हो चुके हैं। उसने अब्बा के चेहरे को गौर से देखा।

उनकी मूंछ के बाल बढ़ गये हैं। इन्हें तराशना होगा। बाल और दाढ़ी भी तो बेतरतीब से बढ़े हुए हैं। बेहतर है कल ड्यूटी से छुट्टी ली जाए और अब्बा की हजामत बनवा दी जाए। वैसे भी जुमा है कल। उसने अपने बॉस को फ़ोन पर इत्तला दी कि अब्बा को चेकअप के लिए अस्पताल ले जाना है सो कल की छुट्टी चाहिए। बॉस पिता के नाम से कुछ न कह सके। वसीम को

छुट्टी मिल गई।

वसीम ने अब्बा से कहा कि अब आराम करें। अब्बा ने किसी रोबोट की तरह इस आदेश को सुना और करवट बदलकर सो ही गए। वसीम ने उनके सोते हुए चेहरे को गौर से देखा और लगा कि जैसे कोई बच्चा गहरी नींद में हो।

रात वसीम ने महसूस किया जैसे ठक-ठक की आवाज़ आ रही है। उसकी नींद खुल गई। झट उठकर कमरे के बाहर आया। देखा अब्बा बैठकी में आकर खड़े हैं और अकबकाये से हैं। वसीम को देखकर उन्होंने बड़े अदब से सलाम किया।

वसीम अचकचा गया, “व अलैकुम अस्सलाम अब्बाजी! इत्ती रात क्या हुआ?”

अब्बा दीवान के कोने पर बैठते हुए बोले, “आंय! अभी रात है?”

“हाँ अब्बाजी, घनघोर रात है,” अब्बा उठने की कोशिश करने लगे, “तो ठीक है तब चलता हूँ, अच्छा अभी रात है? मुझे तो पता ही नहीं चलता है।”

“जी, जाकर सो जाइए।”

“ठीक है, जाता हूँ। अरे हाँ साहब, एक ज़रूरी बात करने आया था आपसे।”

वसीम समझ गया कि अब्बा का दिमाग फिर बहक गया है, “बोलिए क्या बात है?”

“वो ऐसा है न साहब कि आप जो खिदमत कर रहे हैं उसके लिए आप अपने रजिस्टर में पूरा हिसाब लिखते रहते हैं न! ऐसा है कि मुझे तो याद नहीं रहता। आप से गुज़ारिश है कि आप समय समय पर पैसे ले लिया करें। मैं आप लोगों पर बोझ नहीं बनना चाहता हूँ।”

वसीम की समझ में नहीं आ रहा था कि अब अब्बा को कैसे समझाएं कि वे किसी के पेइंग गेस्ट नहीं हैं बल्कि अपने बेटे के घर में हैं।

उसने अब्बा से सिर्फ इतना ही कहा, “आप अभी जाकर सो जाएँ, सुबह रजिस्टर में लिखे के हिसाब से पेमेंट कर दीजियेगा।”

अब्बा के चेहरे पर ख़ुशी के भाव आ गये, “जी साहब, मेहरबानी, यह ठीक रहेगा।”

और लाठी ठेकते हुए जाने लगे बाहर के दरवाजे की तरफ़।

वसीम ने उन्हें बताया, “आपका कमरा तो उधर है अब्बजी, धीरे से लौटिये और अपने कमरे में जाकर सो जाइए।”

अब्बा ने वसीम को अदब से सलाम किया और अपने कमरे की तरफ़ चल दिए।

वसीम अपने कमरे में आया। देखा सलमा गहरी नींद में है।

वसीम भी चादर ओढ़कर सोने की कोशिश करने लगे।

कहानी

नोटिस

डॉ. मुंकेश कुमार शुक्ल

पत्रकारिता विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

munkeshukla.bhu@gmail.com

अवशेष की मृत्यु पच्चीस वर्ष की आयु में हो गई थी। यह अलग बात है कि उसका शरीर अभी भी पचपन वर्ष का होकर नगर निगम के चक्कर काट रहा था। यदि सरकारी अभिलेखों पर विश्वास किया जाए तो वह पचपन वर्ष का एक जीवित नागरिक था; उसके पास आधार कार्ड था, पैन कार्ड था, बैंक खाता था, बीमा था, मतदाता पहचान पत्र था। समाज के लिए वह पूर्णतः जीवित था।

सुबह के दस बजे थे। दीवार पर टेढ़ी घड़ी लटकी थी, जिसका पेंडुलम जैसे वर्षों से केवल औपचारिकता निभा रहा था। बरसात के बाद की धूप सरकारी दफ्तर की दीवारों पर ऐसे चिपकी थी जैसे किसी पुराने आदमी के चेहरे पर बची हुई उम्मीद। नगर निगम के मृत्यु-पंजीकरण विभाग के बाहर लंबी कतार थी। कोई अपने पिता के लिए मृत्यु प्रमाण-पत्र बनवा रहा था, कोई पत्नी के लिए, कोई किसी दुर्घटना में मरे लड़के के लिए।

और कतार के आख़िरी सिरे पर अवशेष खड़ा था - अपने ही मृत्यु प्रमाणपत्र के लिए। उसके हाथ में आवेदन-पत्र था:
मृत्यु प्रमाणपत्र हेतु आवेदन
नाम: अवशेष शुक्ल
संबंध: स्वयं
मृत्यु की तिथि: लगभग तीस वर्ष पूर्व

क्लर्क ने चश्मा नीचे खिसकाकर पूछा, "मृतक से आपका क्या संबंध है?"

अवशेष कुछ क्षण चुप रहा। फिर बोला, "मैं ही हूँ।"

क्लर्क हँसा नहीं। सरकारी दफ्तरों में हास्य की मृत्यु बहुत पहले हो चुकी होती है।

उसने केवल इतना कहा, "मज़ाक मत कीजिए," फिर बोला, "सरकारी कार्यालयों में मनुष्य प्रायः दो ही अवस्थाओं में देखा जाता है - आवेदक या समस्या। तुम दोनों लगते हो, नेक्स्ट?

वह चुपचाप खड़ा रहा।
क्लर्क बोला, "अरे भाई आप जीवित हैं।"

"नहीं," अवशेष ने शांत स्वर में कहा, "केवल मेरा शरीर कार्यरत है। साहब, सच कह रहा हूँ। आदमी एक बार नहीं मरता। मैं पच्चीस साल की उम्र में मर गया था।"

क्लर्क ने पहली बार उसे गौर से देखा। चेहरे पर थकान थी, वह उस आदमी की थकान थी जो बरसों से अपनी लाश ढो रहा हो।

"कैसे मरे?" क्लर्क ने अनायास पूछ लिया। अवशेष की आँखें कहीं दूर चली गईं।

"जब मैंने चित्र बनाना छोड़ा था... उस दिन जब बाबूजी ने कहा था, 'कला पेट नहीं भरती।' जब मैंने पहली बार अपनी कविता फाड़ी थी। जब पिता ने ताना मारा बड़ा कपिल-गावस्कर बनेंगे! जब मैंने नौकरी के पहले दिन अपनी आत्मा की जगह हस्ताक्षर किए थे। उसी दिन मर गया था।"

कमरे में पंखा घूम रहा था। उसकी आवाज़ किसी बूढ़े पुजारी की तरह लग रही थी जो बिना विश्वास के मंत्र पढ़ रहा हो।

अवशेष बोलता गया, "फिर शादी हुई। बच्चे हुए। प्रमोशन मिला। मकान बना। लोग कहते रहे, देखो, कितना सफल आदमी है। लेकिन साहब... सफल तो मेरी लाश हुई थी। मैं तो बस उसे कंधे पर रखकर चलता रहा। मनुष्य प्रायः प्रेम से नहीं, भय से संचालित होता है और भय धीरे-धीरे आत्मा का सबसे कुशल हत्यारा बन जाता है। मनुष्य की आत्मा एक विचित्र सत्ता है; उसे कोई गोली नहीं मारता। वह धीरे-धीरे मरती है - प्रतिदिन थोड़ी-थोड़ी। जब कोई व्यक्ति सत्य जानते हुए भी सुविधा के पक्ष में मौन हो जाता है - उस दिन उसका एक अंश मरता है। धीरे-धीरे एक दिन भीतर केवल एक विशाल श्मशान बचता है। किन्तु समाज उन मृतकों को सबसे अधिक सम्मान देता है जो सबसे व्यवस्थित ढंग से अपनी लाश ढोते हैं।"

"मृत्यु प्रमाणपत्र क्यों चाहिए?" क्लर्क ने धीरे से पूछा।

अवशेष मुस्कराया, "क्योंकि बिना प्रमाणपत्र के कोई नहीं मानता कि मैं मर चुका हूँ। बैंक कहता है, आप जीवित हैं। समाज कहता है, आप सम्मानित नागरिक हैं। पत्नी कहती है, आप ज़िम्मेदार पति हैं। बच्चे कहते हैं, आप अच्छे पिता हैं। लेकिन कोई यह नहीं पूछता कि मैं आख़िरी बार सफल कब हुआ था।" कमरे के बाहर हलचल थी। भीतर एक अजीब सन्नाटा।

क्लर्क ने फॉर्म उठा लिया, "मृत्यु का कारण?"

"धीरे-धीरे सपनों का मर जाना।"

क्लर्क ने कलम रोक दी। फिर उसने कहा, "गवाह चाहिए, होंगे?"

अवशेष हँसा, "मेरी मृत्यु के गवाह बहुत हैं साहब। मेरे शिक्षक, जिन्होंने कहा था कि तुममें प्रतिभा है। वह लड़की, जिसने कहा था कि तुम्हारी आँखों में तेज है। माँ, जिन्होंने आख़िरी दिनों में पूछा था, 'तू अब पहले जैसा क्यों नहीं हँसता?' स्कूल, कॉलेज, खेल का मैदान, थिएटर, सब गवाह हैं।"

क्लर्क, "लेकिन कानूनी गवाह?"

अवशेष चुप हो गया। उसे अचानक

लगा - इस दुनिया में आत्मा की मृत्यु का कोई सरकारी रिकॉर्ड नहीं होता। यहाँ केवल शरीर मरने पर दस्तावेज़ बनते हैं। वह दफ्तर से बाहर निकल आया। बारिश फिर शुरू हो गई थी। सड़क पर लोग भाग रहे थे। हर आदमी कहीं पहुँचने की जल्दी में था, जैसे जीवन कोई स्टेशन हो जो छूट जाएगा।

वह फुटपाथ पर बैठ गया। उसे लगा यह पूरा नगर एक विराट शवयात्रा है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी लाश ढो रहा है। उसे लगा, पूरा शहर मृत लोगों से भरा है, चलते हुए, खाते हुए, मुस्कराते हुए मृत लोग। किसी की मृत्यु नौकरी के पहले दिन हुई थी। किसी की विवाह के बाद। किसी की उस क्षण जब उसने डर के कारण सच बोलना छोड़ दिया।

अवशेष सोच ही रहा था कि तभी एक छोटा बच्चा बारिश में भीगता हुआ दौड़ा। वह पानी में छलाँग लगाकर हँस रहा था।

उसकी माँ चिल्लाई, “बीमार पड़ जाएगा!” लेकिन बच्चा फिर भी माना नहीं खिलखिलाता रहा।

अवशेष उसे देर तक देखता रहा। अचानक उसे अपना बचपन याद आया - बरसात, मिट्टी, रंग, कविताएँ, सपने। और तभी उसे लगा कि उसके भीतर कहीं बहुत गहरे कोई हलचल हुई है। जैसे किसी बंद कमरे की खिड़की अचानक खुल गई हो। और तभी उसकी आँख खुल गई।

घड़ी ने चार बजाए थे। वह अपने बिस्तर पर था। साँस तेज़ चल रही थी। कुछ देर तक वह समझ ही नहीं पाया कि क्या वास्तविक है। फिर धीरे-धीरे उसे एहसास हुआ, वह सपना था। वह उठकर खिड़की तक गया, पक्षियों की पहली आवाज़ जन्म ले रही थी। वर्षों बाद उसने उगती सुबह को सचमुच देखा। कुछ देर तक वह स्थिर बैठा रहा। फिर उसने कमरे को देखा - धूल खाई रंगों की पेटी, वर्षों पुरानी डायरी, टूटा बैट, कुछ मुखौटे।

वह उठा। धीरे से रंगों की पेटी खोली। उस क्षण उसे पहली बार समझ आया कि मनुष्य का पुनर्जन्म किसी धार्मिक घटना का नाम नहीं है। पुनर्जन्म वह क्षण है जब मनुष्य समाज द्वारा आरोपित अपने मृत व्यक्तित्व से बाहर निकलकर पुनः अपने जीवित स्व को छू लेता है। अवशेष की आँखों से आँसू बह निकले। क्योंकि उसने अचानक जाना, वह सपना नहीं था। वह उसकी आत्मा द्वारा जारी किया गया मृत्यु-पूर्व नोटिस था। और आज पचपन वर्ष की आयु में, वह पहली बार सचमुच जगा था।

लघु कथा

चूहेदान

असगर वजाहत

सुप्रसिद्ध नाटककार व
वृत्तचित्र निर्माता
sanketpatrika@gmail.com

मेरे घर में चूहे बहुत हो गए थे। काफ़ी नुकसान पहुंचाते थे। न सिर्फ अपना पेट भरते थे बल्कि हमारे पेट पर लात मारते थे। मतलब यह कि हमारा जीवन मुश्किल में कर दिया था। श्रीमती जी से सलाह हुई और उन्होंने कहा कि चूहों को पकड़ने के लिए एक चूहेदान ले आओ। मैं बाज़ार गया और एक बड़ा चूहेदान ले आया। अब धीरे-धीरे चूहे उस चूहेदान में आने लगे। लेकिन मुश्किल यह हो गई कि उस चूहेदान से उनको बाहर कैसे निकाला जाए और फिर क्या किया जाए। यह बात हमारी समझ में नहीं आई थी। तो हुआ यह कि चूहेदान भरता चला गया और उसमें बहुत ज़्यादा चूहे आ गए।

फिर क्या हुआ कि चुनाव आ गए। चुनाव मतलब इलेक्शन। तय पाया कि चुनाव में सब वोट देंगे। मतलब घर में जो भी है वह वोट देगा। तब चूहों ने भी वोट दिए।

चुनाव का नतीजा यह निकला।

बहुमत के कारण चूहे चुनाव जीत गए और फिर क्या था। वे चूहेदान से बाहर निकल आए। उनके हाथ में सत्ता आ गई और उन्होंने सबसे पहले यह पता लगाया कि उन्हें चूहेदान में किसने बंद किया था। तब उन्हें मेरे बारे में पता चला और उन्होंने आदेश दिया कि लोकतंत्र की सुरक्षा के लिए मुझे चूहेदान में बंद कर देना चाहिए।

अब चूहे लोकतंत्र चला रहे हैं और मैं चूहेदान में हूँ।

लघु कथा

गुड-न्यूज़, नियो-नाज़ी

रेखा राजवंशी

पुरस्कृत संपादक, अनुवादक

rekha_rajvanshi@yahoo.com.au

गुड-न्यूज़

‘आजकल के बच्चे कैसे हो गए हैं, प्रौढ़ हो जाने पर भी शादी के लिए तैयार नहीं। किसी को पसंद नहीं करते, कहाँ से लाएं इनके लिए सलमान खान और करीना कपूर? शादी के बिना ही सब कुछ मिल रहा है तो शादी क्यों करें?

आशा आंटी सत्तर के करीब थीं, दोनों बच्चों ने शादी नहीं की थी। एक दिन जैसे उनकी दुनिया ही बदल गई। बेटी राधा घर आई, बोली, 'मम, आपको एक गुड न्यूज़ देनी थी। मैं माँ बनने वाली हूँ।'

'आखिर तुम्हें कोई पसंद आ ही गया, कौन है वो लकी मैन?'

'मम्मी, क्या आज के युग में भी माँ बनने के लिए मैन या पार्टनर की ही ज़रुरत है? मैंने आई.वी.एफ़ करा लिया है और अब मुझे तीन महीने की प्रेगनेंसी है।'

आशा आंटी ने अविश्वास से बेटी की तरफ देखा और फिर आगे बढ़ के उसे गले लगा लिया।

'मैं बहुत खुश हूँ राधा।' यह सोचकर उनके चेहरे पर मुस्कराहट आ गई कि कम से कम ये वंश तो आगे चलेगा।

नियो-नाज़ी

रॉबर्ट मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मा ऑस्ट्रेलियाई युवक था। उसके पिता सदा बेरोज़गारी और मानसिक तनाव से ग्रसित रहे। शराब और ड्रग्स में पैसे उड़ा देते। उसकी माँ ही थीं जो उसे प्यार करतीं, वे ही हर रोज़ मेहनत करके घर चलाती थीं। रॉबर्ट का बचपन प्यार से ज़्यादा गुस्से और असुरक्षा में बीता; उसे लगता कि विदेशी लोग उनकी नौकरी और अवसर छीन रहे हैं।

रॉबर्ट जहाँ काम करता था, वहाँ ब्राउन कलर के लोग उसके बॉस थे, जिनका कहना उसे मानना पड़ता। उसे लगता वे उससे ज़्यादा सुखी हैं; उनके पास सद्भाव और प्रेम है, जो उसे कभी नहीं मिला। सोशल मीडिया पर उसने एक ग्रुप जॉइन किया, जहाँ लोग उसी की तरह गुस्से में थे। वे हर उस व्यक्ति से नफ़रत करते थे जो अश्वेत थे। धीरे-धीरे वह नियो-नाज़ी

विचारधारा से पूरी तरह जुड़ गया, उसे लगने लगा कि 'देश की रक्षा' के नाम पर वह सही काम कर रहा है।
एक दिन एक रिमोट एरिया में रॉबर्ट की कार का एक्सीडेंट हो गया, उसका सिर स्टीयरिंग व्हील से टकराया और खून बहने लगा। सुनसान सड़क पर लोग नहीं थे। तभी एक व्यक्ति ने कार रोककर उसे अस्पताल पहुँचाया, होश आने पर उसे पता चला उस व्यक्ति का नाम अब्बास था, जो मुस्लिम पृष्ठभूमि का ब्राउन व्यक्ति था। इस घटना ने उसकी नियो-नाज़ी विचारधरा को सदा के लिए बदल दिया।

साक्षात्कार

हिंदी भाषा मेरे अंतरंग की भाषा है!

प्रो रेखा सेठी से अर्पणा संत सिंह की बातचीत

अर्पणा संत सिंह

गृहस्वामिनी की संपादक
arpanasantsingh@gmail.com

दिल्ली विश्वविद्यालय के इंद्रप्रस्थ महिला कॉलेज में लगभग तीन दशकों तक अध्यापन, शोध और अकादमिक प्रशासन से जुड़ी, प्रो. सेठी का कार्यक्षेत्र स्वतंत्रता के बाद की हिंदी कविता, स्त्री-विमर्श, मीडिया अध्ययन तथा अनुवाद अध्ययन तक विस्तृत है। एक अध्यापिका, प्रशासक और चिंतक के रूप में उन्होंने युवा पीढ़ी, विशेषकर छात्राओं के बौद्धिक और सामाजिक विकास से जुड़े प्रश्नों पर निरंतर कार्य किया है। उनकी अब तक 21 पुस्तकें हैं, जिनमें संपादित तथा अनूदित रचनाएं शामिल हैं। उनकी चर्चित कृतियाँ 'स्त्री-कविता : पक्ष और परिप्रेक्ष्य' तथा 'स्त्री-कविता : पहचान और द्वंद्व' समकालीन हिंदी स्त्री-कविता और जेंडर विमर्श के क्षेत्र में महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ मानी जाती हैं। उन्होंने अनेक प्रमुख भारतीय कवियित्रियों की रचनाओं का अनुवाद किया है तथा अनुवाद अध्ययन से संबंधित राष्ट्रीय स्तर की अनेक कार्यशालाओं और प्रशिक्षण कार्यक्रमों से जुड़ी रही हैं। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अकादमिक मंचों पर सक्रिय प्रो. रेखा सेठी साहित्य, समाज, स्त्री-अनुभव और सांस्कृतिक संवाद के प्रश्नों पर अपनी गंभीर और संवेदनशील दृष्टि के लिए विशेष रूप से जानी जाती हैं।

अर्पणा: रेखा जी, आपके व्यक्तित्व में अध्यापन, शोध, आलोचना और अनुवाद-कई आयाम एक साथ दिखाई देते हैं। आपके साहित्यिक और शैक्षणिक जीवन की प्रेरणा क्या रही, और आपने हिंदी साहित्य को ही अपने अध्ययन का केंद्र क्यों चुना?

रेखा: मेरा बचपन एक ऐसे मोहल्ले में बीता, जहाँ भाषा केवल बोली नहीं जाती थी, वह जैसे गलियों में घूमती, छतों पर सूखते कपड़ों के साथ फड़फड़ाती और शाम के चाय के प्यालों से उठती भाप में घुल जाती

थी। पुरानी दिल्ली के चावड़ी बाज़ार में हमारा घर ग़ालिब की हवेली से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर था, और शायद इसी निकटता ने शब्दों से मेरे प्रारंभिक परिचय में एक अनदेखी आंच भर दी।

आसपास की बोलचाल में हिंदी और उर्दू का मिला-जुला एक सहज हिंदुस्तानी धरातल था, घर के भीतर पंजाबी की आत्मीयता थी, और स्कूल एक क्रिश्चियन मिशनरी द्वारा संचालित अंग्रेज़ी माध्यम का विद्यालय था। इस तरह अनेक भाषाओं की संगत ने मेरे बचपन को एक बहुभाषिक आँगन बना दिया, जहाँ हर कोने से किसी न किसी भाषा की धुन सुनाई देती थी।

मैं बहुत छोटे से ही साहित्य पढ़ने लगी थी और यह पढ़ना धीरे-धीरे मेरी आदत से बढ़कर मेरी आत्मिक ज़रूरत बनने लगा। एक संगठित साहित्यिक परंपरा से मेरा पहला परिचय रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साहित्य के माध्यम से हुआ; नौवीं-दसवीं तक आते-आते उनकी लगभग सभी कहानियाँ और उपन्यास मैंने पढ़ डाले थे। प्रेमचंद मेरे लिए भारतीय समाज की जटिलताओं के पहले बड़े कथाकार बने, वहीं अंग्रेज़ी के चार्ल्स डिकेन्स और समरसेट मॉम ने मुझे एक अलग संवेदनात्मक और कथात्मक दुनिया से परिचित कराया।

कुल मिलाकर, मैं भाषाओं और साहित्य की एक समृद्ध बहुलता के बीच पली-बढ़ी, इसलिए स्वाभाविक था कि मेरा झुकाव इसी दिशा में गहराता चला जाए। पर हिंदी से मेरा विशिष्ट रिश्ता एक विशेष अनुभव के बाद बना। हमारे स्कूल की स्वर्ण जयंती पर विद्यालय के इतिहास पर आधारित एक नृत्य-नाटिका की तैयारी हो रही थी, जिसकी स्क्रिप्ट लिखने की ज़िम्मेदारी मुझे मिली। विद्यालय प्रशासन से हमें जो सामग्री अंग्रेज़ी में मिलती, मैं उसे हिंदी में रूपांतरित करती थी। यही वह क्षण था जब मैंने बहुत निकट से महसूस किया कि हिंदी के शब्द केवल अर्थ नहीं देते, वे एक खास प्रकार का रस, एक धड़कन और माधुर्य भी देते हैं। उस नृत्य-नाटिका के लिए लिखते-लिखते मुझे लगा कि हिंदी भाषा मेरे अंतरंग की भाषा है, और यहीं से उससे मेरा एक गहरा, लगभग निजी, रिश्ता बन गया। आगे चलकर मैंने स्नातक स्तर पर हिंदी साहित्य को अपना विषय चुना और फिर अध्यापन के क्षेत्र में आई। इस प्रकार, भाषा के बहुरंगी संसार से शुरू हुई मेरी यात्रा धीरे-धीरे हिंदी साहित्य के साथ एक स्थायी और आत्मीय जुड़ाव तक पहुँची।

अर्पणा: लगभग तीन दशकों तक छात्राओं के साथ कार्य करने के अनुभव ने आपके स्त्री-विमर्श संबंधी दृष्टिकोण को किस प्रकार प्रभावित किया?

रेखा: मेरी शिक्षा का लगभग पूरा सफर स्त्री-शिक्षा संस्थानों में बीता- स्कूल भी कन्या विद्यालय, और आगे जिस महाविद्यालय में मैंने पढ़ाई की, वही बाद में मेरा कार्यस्थल भी बना। इस तरह, कक्षा के बाहर और अंदर, दोनों जगह मेरे आसपास अधिकांशतः स्त्रियाँ ही थीं-उनके अनुभव, उनकी आवाज़ें, उनका उत्साह और उनकी दुविधाएँ। ऐसे वातावरण में स्त्री-संबंधी प्रश्न सैद्धांतिक बहस भर नहीं थे; वे हमारे रोज़मर्रा के जीवन का हिस्सा थे। हम बार-बार इस बात पर विचार करते थे कि स्त्री होने के नाते हम स्वयं को कैसे देखें, कैसे प्रस्तुत करें, और समाज हमारे बारे में जो तैयार-शुदा छवियाँ बनाकर रखता है, उन्हें किस तरह बदला जा सकता है।

घर में भी हम दो बहनें हैं, इसलिए स्त्री-जगत की छोटी-बड़ी परतें बहुत कम उम्र से ही मेरे सामने थीं। मेरे लिए स्त्री-विमर्श केवल यह सवाल भर नहीं रहा कि स्त्रियों को किस-किस अधिकार से वंचित रखा गया है; महत्वपूर्ण यह भी रहा कि स्त्रियाँ क्या-क्या कर सकती हैं, उनमें कितनी रचनात्मक और बौद्धिक क्षमता है, और उनके सामने संभावनाओं का जो विस्तृत क्षितिज फैला हुआ है, उसे वे कैसे पहचानें।

मैं स्वयं को सौभाग्यशाली मानती हूँ कि महिला शिक्षण संस्थानों में काम करते हुए मुझे कभी किसी तरह की हीनता का अहसास नहीं कराया गया; उलटे, हर प्रकार की ज़िम्मेदारी संभालने का अवसर मिला। अक्सर मैं मज़ाक में कहती हूँ कि सह-शिक्षा वाले संस्थानों में वित्त, प्रायोजन या नेतृत्व से जुड़े ज़्यादातर काम पुरुषों

के हिस्से में चले जाते हैं, लेकिन महिला शिक्षण संस्थानों में हमें इन सभी भूमिकाओं को स्वयं निभाना होता है। यह अपने आप में नेतृत्व और स्वावलंबन का एक अलग प्रकार का प्रशिक्षण है।

जब भी मैं स्त्री-विमर्श से जुड़े प्रश्नों पर लिखती या सोचती हूँ, मेरी छात्राएँ मेरे सामने, एक जीवंत उपस्थिति की तरह खड़ी हो जाती हैं। पिछले लगभग छह दशकों में स्त्री जीवन में आए व्यापक बदलावों को मैं उनकी आँखों में, उनके सवालों में, उनके आत्मविश्वास में पढ़ पाती हूँ। आज की छात्राएँ कहीं अधिक आश्वस्त और मुखर हैं, और उन्हें देखकर गहरा संतोष होता है। लेकिन जब कभी वे अपने परिवार की बात करती हैं, तो स्पष्ट हो जाता है कि भेदभाव की अनेक संरचनाएँ अब भी मौजूद हैं। साथ ही यह भी दिखाई देता है कि उनके माता-पिता उनकी शिक्षा के प्रति पहले से कहीं अधिक सजग हैं, उन्हें आगे बढ़ने के लिए संसाधन उपलब्ध करा रहे हैं। यही विरोधाभासी-सी सच्चाई-संरचनात्मक बाधाएँ और बढ़ती संभावनाएँ - मेरे स्त्री-विमर्श की दृष्टि को सतत गतिशील बनाए रखती हैं। धीरे-धीरे ही सही, बहुत कुछ बदला है और बदल भी रहा है। ये परिवर्तन मुझे एक शुभ संकेत की तरह दिखाई देते हैं।

अर्पणा: आप किस प्रकार का विचारात्मक एवं भावात्मक बदलाव एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक देखती हैं?

रेखा: मुझे लगता है कि हर पीढ़ी अपने समय की चुनौतियों, अवसरों और सामाजिक संरचनाओं के बीच खुद को रचती है, जैसे कोई नदी अपने इर्द-गिर्द की भूमि के अनुसार अपने लिए नया रास्ता बनाती जाती है। अगर हम आज की युवा पीढ़ी की तुलना पहले की पीढ़ियों से करें, तो सबसे स्पष्ट अंतर उनके आत्मविश्वास और प्रश्न करने की क्षमता में दिखाई देता है। आज की पीढ़ी परंपराओं को केवल इसलिए स्वीकार नहीं करती कि वे पुरानी हैं; वह उनके औचित्य पर विचार भी करती है, उनसे संवाद भी करती है और ज़रूरत पड़ने पर उन्हें चुनौती भी देती है। उनके भीतर अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता अधिक है, और वे अक्सर इस जागरूकता को व्यवहार में भी रूपांतरित करना चाहती हैं।

भावात्मक स्तर पर भी परिवर्तन बहुत साफ़ है। पहले परिवार और समाज की विभिन्न परतों के दबाव के कारण अपनी भावनाओं को दबाकर रखना एक तरह की आदत-सी थी, जबकि आज की पीढ़ी अपनी आकांक्षाओं, असुरक्षाओं, प्रेम, उलझनों - इन सबके बारे में ज़्यादा खुलकर बात करती है। यह स्पष्ट संवाद को संभव बनाती है, हालांकि इसके साथ नई प्रकार की अस्थिरताएँ और चुनौतियाँ भी आती हैं। मेरा मानना है कि हर पीढ़ी अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी के अनुभवों से सीखते हुए आगे बढ़ती है, इसलिए पीढ़ियों के बीच संवाद अत्यंत आवश्यक है।

अर्पणा: आपकी चर्चित कृतियाँ 'स्त्री-कविता: पक्ष और परिप्रेक्ष्य' तथा 'स्त्री-कविता: पहचान और द्वंद्व' हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। इन पुस्तकों की रचना-यात्रा के बारे में कुछ बताइए।

रेखा: इन दोनों पुस्तकों के पीछे दो मुख्य प्रेरक क्षण रहे—एक अकादमिक मंच से जुड़ा और दूसरा कक्षा के अनुभवों से। पहला प्रसंग इम्पीरियल कॉलेज, लंदन में आयोजित एक सम्मेलन का है, जहाँ मुझे "Feminist Voices from the Margins of Caste and Class in the Context of Contemporary Hindi Women's Poetry" विषय पर शोध-पत्र प्रस्तुत करने का अवसर मिला। उस शोध-पत्र में मैंने निर्मला पुतुल, सुशीला टाकभौरे, नीलेश रघुवंशी जैसी कवयित्रियों की कविताओं पर चर्चा की थी। लेकिन जब मैंने यह शोध-पत्र प्रस्तुत किया, तो अलग-अलग देशों से आए विद्वान इन रचनाकारों के बारे में इंटरनेट पर जानकारी खोजने लगे और यूनिवर्सिटी ऑफ पेरिस से आई एक प्रोफेसर ने यहाँ तक कहा कि 'we haven't heard anything about that part of the world'. उस क्षण मुझे यह एहसास हुआ कि हमारे यहाँ विश्वस्तरीय लेखन तो हो रहा है, किंतु विश्व-पटल पर उसकी उपस्थिति के लिए गंभीर प्रयत्न अभी बाकी हैं।

मुझे लगा कि हमें अपने साहित्य का मूल्यांकन उसी गंभीर आलोचनात्मक दृष्टि से करना चाहिए, जिससे हम विश्व साहित्य का करते आए हैं। दूसरी प्रेरणा मेरे अध्यापन से आई। जब मैं स्त्री-चिंतन और स्त्री-विमर्श के पाठ्यक्रमों को पढ़ाती थी, तो चर्चाओं का केंद्र अक्सर पश्चिमी स्त्रीवादी अवधारणाएँ बन जाती थीं - जेंडर और सेक्स का अंतर, पितृसत्ता का प्रतिरोध, सार्वभौम बहनापा इत्यादि। मुझे हमेशा लगता था कि भारतीय संदर्भ में स्त्रीवाद की अपनी विशिष्ट परंपरा है, जिसकी गंभीर पड़ताल होना आवश्यक है।

इसके साथ ही मैं यह भी मानती हूँ कि सभी स्त्रियाँ एक जैसी नहीं होतीं; जाति, वर्ग, क्षेत्र, भाषा और सामाजिक परिस्थिति के आधार पर उनके अनुभव, उनके संघर्ष और उनकी आकांक्षाएँ अलग-अलग स्वर ग्रहण करती हैं। यही विविधता समकालीन स्त्री-कविता में भी दिखाई देती है। यही सब सोचकर मैंने सात ऐसी कवयित्रियों का चयन किया, जिनकी भाषा, विचारधारा और रचनात्मक दृष्टि एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न थी। उन्हें केवल एक सूत्र जोड़ता था-उनकी स्त्री अस्मिता। उनकी कविताओं का विश्लेषण करते हुए मैंने कुछ निष्कर्षों को व्यवस्थित रूप में सामने रखने की कोशिश की, जो 'स्त्री-कविता : पक्ष और परिप्रेक्ष्य' में रूपायित हुए। दूसरी पुस्तक 'स्त्री-कविता : पहचान और द्वंद्व' में मैंने इन कवयित्रियों और कुछ अन्य रचनाकारों के विस्तृत साक्षात्कार शामिल किए, ताकि यह समझा जा सके कि जब हम "स्त्री-कविता" जैसी संज्ञा का प्रयोग करते हैं, तो स्वयं रचनाकार इस संबोधन को किस रूप में ग्रहण करते हैं। एक प्रकार से पहली पुस्तक विश्लेषण और शोध पर केंद्रित थी, जबकि दूसरी ने फील्डवर्क के रूप में रचनाकारों की जीवित आवाज़ों को सामने रखा। बाद में इस कार्य का अंग्रेज़ी रूपांतरण भी प्रकाशित हुआ, जिससे यह विमर्श अंतरराष्ट्रीय स्तर तक पहुँच सका। अंतरराष्ट्रीय प्रकाशक रटलेज ने इसे An Alchemy of Words and Silences: Contemporary Hindi Women Poets शीर्षक से 2026 में प्रकाशित किया।

साक्षात्कार का दूसरा भाग अगले अंक में।

लेख / आलेख

एआई की रचनात्मकता के पीछे की नाइंसाफ़ी

बालेन्दु शर्मा दाधीच

एल्गो टेक्नोलॉजीज, दुबई के मुख्य कार्यकारी अधिकारी

जो लोग एआई का इस्तेमाल करके प्रफुल्लित हैं, उन्हें शायद ही इस बात की खबर हो कि इन हैरतअंगेज़ शक्तियों के पीछे किसी इंसान या संस्थान की क्रिएटिविटी और बौद्धिक संपदा का इस्तेमाल हुआ है। एक तरफ़ बड़ी कंपनियाँ हैं जो एआई के साथ मिलकर अरबों डॉलर कमाने की होड़ में हैं, वहीं दूसरी तरफ़ ऐसे अनगिनत रचनाकार और छोटे संस्थान हैं जिन्हें पता भी नहीं कि उनकी किस रचना का इस्तेमाल एआई को ट्रेनिंग देने के लिए हुआ है। क्या उनके किसी अधिकार का उल्लंघन हो रहा है या फिर क्या इसके कोई आर्थिक मायने भी हैं जो उनके लिए फायदेमंद हो सकते हैं।

एआई सीखती कहाँ से है?

जब आप चैटजीपीटी, जेमिनी या मिडजर्नी जैसे एआई टूल का इस्तेमाल करते हैं तो ये आपको तुरंत कहानियाँ, तस्वीरें या गाने बना कर दे

देते हैं। लेकिन एआई सिस्टमों में यह काबिलियत सीखने (ट्रेनिंग) के जरिए आती है और उन्हें सिखाने के लिए लाखों-करोड़ों किताबों, गानों, तस्वीरों, समाचारों, साहित्य, वीडियो और लेखों आदि का इस्तेमाल किया जाता है। कुछ सामग्री बाकायदा आपसी एग्रीमेंट के ज़रिए मिलती है लेकिन बहुत सारी यूँ ही इधर-उधर से, खासकर इंटरनेट से, बटोर ली जाती है। आज एआई मोज़ार्ट जैसा संगीत, पिकासो जैसे चित्र और मशहूर लेखकों जैसी कहानियाँ बना सकती है - एकदम वैसे नहीं तो उनकी शैली में ज़रूर।

मुकदमों की बाढ़:

कुछ साल पहले जब यह मुद्दा उठा था, तब न्यू यॉर्क टाइम्स जैसे गिने-चुने संस्थानों ने ओपनएआई जैसी कंपनियों के खिलाफ़ मोर्चा खोला था। वर्ष 2025 के अंत तक एआई कंपनियों के खिलाफ 70 से भी ज्यादा कॉपीराइट के मुकदमे दर्ज हो चुके थे और यह संख्या 2024 की तुलना में दोगुनी से भी ज्यादा है। सबसे चर्चित मामला रहा एंथ्रोपिक कंपनी के खिलाफ़, जिन पर लेखकों के एक समूह ने आरोप लगाया कि उनकी किताबें, जो इंटरनेट पर पायरेटेड (चोरी) पड़ी थीं, बिना इजाज़त उठाकर अपनी एआई को ट्रेनिंग के लिए दीं। कोर्ट ने माना कि ट्रेनिंग के लिए किताबें इस्तेमाल करना 'फ़ेयर यूज़' में आ सकता है, लेकिन चोरी की गई लाखों किताबें रखना जायज़ नहीं। सितंबर 2025 में एंथ्रोपिक ने 1.5 अरब डॉलर यानी करीब 12,500 करोड़ रुपये का ऐतिहासिक समझौता किया। हर एक किताब के बदले करीब 3,000 डॉलर दिए गए। यह अमेरिकी इतिहास में कॉपीराइट का सबसे बड़ा समझौता है।

फिर मेटा (फेसबुक की मूल कंपनी) की बारी आई। मशहूर लेखक स्कॉट टुरो और पाँच बड़े प्रकाशन घरानों ने मई 2026 में मेटा और उसके सीईओ मार्क जुकरबर्ग के खिलाफ़ मुकदमा किया कि मेटा ने अपनी एआई 'लामा' को ट्रेनिंग देने के लिए करोड़ों कॉपीराइट-प्राप्त किताबें पायरेटेड वेबसाइटों से चुराईं; यह फ़ैसला खुद जुकरबर्ग ने मंजूर किया था। उनके एक कर्मचारी का कहना था: अगर हमने एक भी किताब का लाइसेंस लिया, तो हम 'फ़ेयर यूज़' की अपनी रणनीति नहीं चला पाएंगे।" टुरो ने कहा कि यह इतिहास का सबसे बेशर्म कॉपीराइट उल्लंघन है।

परप्लेक्सिटी नाम की एआई सर्च कंपनी भी अब कई मोर्चों पर घिरी है: सीएनएन, न्यू यॉर्क टाइम्स, शिकागो ट्रिब्यून, ब्रिटेनिका, मेरियम-वेबस्टर और अन्य नौ संस्थानों ने इस पर मुकदमे किए हैं। आरोप है कि परप्लेक्सिटी उनकी खबरें, लेख और तस्वीरें बिना इजाज़त कॉपी करती है।

कुछ वक्त पहले ऐसी खबरें थीं कि बड़ी मनोरंजन कंपनियाँ एआई के साथ मिलकर नए प्रोजेक्ट बना रही हैं। लेकिन तस्वीर पलट गई है। जून 2025 में डिज्नी और यूनिवर्सल ने मिडजर्नी एआई के खिलाफ मुकदमा ठोक दिया। आरोप है कि मिडजर्नी स्टार वॉर्स, मार्वल, और दूसरे चर्चित किरदारों की नकल करने वाली तस्वीरें बनाता है। बाद में वार्नर ब्रदर्स भी इस केस से जुड़ गया और इन सभी का एक संयुक्त मुकदमा बन गया, डिज़्नी और अन्य बनाम मिडजर्नी। यानी जो कंपनियाँ कभी एआई के साथ मिलकर काम करने की सोच रही थीं, वे आज कोर्ट में हैं।

संगीत की दुनिया में बड़ा बदलाव:

संगीत की दुनिया में भी कुछ बड़े समझौते हुए हैं जो नई दिशा दिखाते हैं। एआई म्यूजिक प्लेटफॉर्म सुनो और यूडियो पर रिकॉर्ड लेबल्स ने 2024 में मुकदमा किया था। इन पर आरोप था कि उन्होंने करोड़ों कॉपीराइट गाने बिना इजाज़त इस्तेमाल किए। पिछले वर्ष, यूनिवर्सल म्यूजिक ग्रुप और वार्नर म्यूजिक ग्रुप ने इन दोनों कंपनियों से समझौता किया। शर्त यह रही कि एआई द्वारा बनाए गए हर गाने के लिए बेहद छोटी रकम- लगभग 0.2 से 0.5 पैसे प्रति गाना रॉयल्टी दी जाएगी। साथ ही, कलाकार स्वयं चुनेंगे कि उनका संगीत एआई को सिखाने के लिए इस्तेमाल हो या नहीं। लेकिन यहाँ भी वही पुरानी समस्या है। बड़े लेबल्स को तो रकम मिल गई, छोटे और स्वतंत्र संगीतकारों की ओर से अलग से क्लास-एक्शन मुकदमे अदालत में हैं। एक सर्वे में 40 फ़ीसदी संगीतकारों ने कहा कि वे काम छोड़ने की सोच रहे हैं क्योंकि उन्हें डर है कि उनकी

मेहनत बेकार चली जाएगी।

एआई की रचना का कॉपीराइट किसका?

मार्च 2026 में अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने साफ कर दिया कि एआई द्वारा बनाई गई रचना पर कॉपीराइट नहीं मिल सकता, कॉपीराइट सिर्फ किसी इंसान की रचनाशीलता को मिलता है। यह फैसला उस मामले में आया जिसमें एक वैज्ञानिक ने अपनी एआई मशीन द्वारा बनाई तस्वीर के लिए कॉपीराइट माँगा था। रचनाकारों की शिकायतें बहुआयामी हैं। पहली, उनसे पूछे बिना उनकी सामग्री इस्तेमाल हो जाती है। दूसरी, यह पता लगाना नामुमकिन है कि एआई ने किस लेखक या कलाकार की कितनी सामग्री का इस्तेमाल किया। तीसरी, छोटे रचनाकारों को बड़ी कंपनियों जैसे अनुपात में फ़ायदा नहीं मिलता। चौथी, जो समझौते हो रहे हैं वे भी केवल बड़े लेबलों और बड़े प्रकाशकों के बीच होते हैं।

दुनिया भर में अलग-अलग रुख:

अलग-अलग देशों ने इस मुद्दे को अलग-अलग तरीके से देखा है। अमेरिका में कोई खास कानून नहीं है। वहाँ 'फ़ेयर यूज़' का नियम है जिसका मतलब है कि कुछ 'उचित' मामलों में सामग्री को बिना पूछे इस्तेमाल किया जा सकता है। अदालतें अभी अलग-अलग फैसले दे रही हैं। हालाँकि एंथ्रोपिक का 1.5 अरब डॉलर का समझौता नया मानदंड बन गया है। ब्रिटेन ने एक प्रस्ताव पर विचार शुरू किया है कि जो एआई कंपनियों को कॉपीराइट वाली सामग्री का उपयोग करने की अनुमति देगा, बशर्ते वे रॉयल्टी का भुगतान करें। अगर रचनाकार मना करे, तो उनकी सामग्री इस्तेमाल नहीं की जा सकेगी। यूरोपीय संघ का एआई एक्ट अगस्त 2026 से पूरी तरह लागू होगा जिसके तहत एआई कंपनियों को यह बताना होगा कि उन्होंने ट्रेनिंग के लिए क्या-क्या सामग्री इस्तेमाल की है।

जापान ने 2018 में ही तय कर दिया था कि एआई के लिए किसी भी सामग्री का इस्तेमाल किया जा सकता है। चीन में सब सरकार के नियंत्रण में है। ऑस्ट्रेलिया में व्यवस्था है कि अगर एआई प्लेटफॉर्म खबरों का इस्तेमाल करते हैं तो उन्हें अखबारों को पैसे देने होंगे।

भारत में अभी तक कोई साफ़ कानून नहीं है। यहाँ 50 करोड़ लोग यूट्यूब और स्पॉटिफाई जैसे प्लेटफ़ॉर्मों पर अपनी सामग्री डालते हैं। दिसंबर 2025 में सरकार ने एक नया मसौदा बनाया है - रचनाकार चाहें तो अपनी सामग्री के इस्तेमाल से इंकार कर सकते हैं और अगर इस्तेमाल होता है तो उन्हें पैसे मिलेंगे। हालाँकि इसके लिए जो व्यवस्था सुझाई जा रही है वह बहुत जटिल दिखती है। भारत के लाखों हिंदी-उर्दू-बंगाली-तमिल साहित्यकारों की रचनाएँ इंटरनेट पर भरी पड़ी हैं और यह तय नहीं कि उनमें से कितनों की सामग्री पहले ही एआई मॉडलों को सिखाने में लग चुकी है।

दूसरा पहलू भी है:

एआई कंपनियों को लगता है कि कड़े नियमों से उनका काम मुश्किल हो जाएगा। अगर रचनाकारों से हर बार पूछना पड़ा तो उनकी लागत 90 फ़ीसदी तक बढ़ जाएगी। कंपनियों का तर्क यह भी है कि एआई सभी के लिए फायदेमंद है क्योंकि अब एक छोटा रचनाकार भी कुछ सेकंड में गाने या कहानियाँ बना सकता है। उनका कहना है कि अगर सख्त नियम लागू किए गए तो सिर्फ अमेरिका और चीन ही एआई के क्षेत्र में आगे बढ़ेंगे जबकि बाकी देश पीछे रह जाएंगे।

आगे क्या?

संगीत की दुनिया में जो हुआ वह एक संकेत है। बड़ी कंपनियाँ एआई से लड़ने की बजाय उसके साथ समझौता करके अपना हिस्सा वसूल रही हैं। जो दो-स्तरीय व्यवस्था उभर रही है, वह ऐसी दिखती है - बड़े लोगों के लिए लाइसेंसिंग, छोटों के लिए मुकदमेबाज़ी। यह तथाकथित व्यवस्था संगीत स्ट्रीमिंग के शुरुआती दौर की याद दिलाती है - तब भी बड़े लेबल्स को फायदा हुआ था और छोटे कलाकार पीछे रह गए थे। सवाल टेढ़ा है किंतु इतना तो तय है कि इस पूरी प्रक्रिया में एक पक्ष के साथ नाइंसाफ़ी ज़रूर हो रही है, जिसे शायद इसकी पूरी खबर भी नहीं और जब तक उसे खबर होगी, तब तक बहुत कुछ बदल चुका होगा।

लेख / आलेख

एक फ्लावर-शो ऐसा भी

नर्मदा कुमारी

भारत सरकार के कार्यालय में वरिष्ठ अनुवाद अधिकारी
narmadakr21@gmail.com

सौ से भी अधिक वर्षों से लगातार बेंगलुरु (कर्नाटक) के लालबाग बोटैनिकल गार्डन में आयोजित किये जाने वाले प्रसिद्ध फ्लावर-शो (पुष्प प्रदर्शनी) की शुरुआत 1912 में ब्रिटिश काल के दौरान हुई। दस-पंद्रह दिनों तक चलने वाली यह प्रदर्शनी साल दो बार - गणतंत्र दिवस (जनवरी) और स्वतंत्रता दिवस (अगस्त) - आयोजित की जाती है, जो न केवल फूलों की विविधता को प्रदर्शित करती है अपितु राज्य की संस्कृति और विरासत को भी दर्शाती है। दिनांक 14 जनवरी से 26 जनवरी, 2026 के दौरान आयोजित प्रदर्शनी (219वाँ संस्करण) प्रकृति, साहित्य और विरासत को जीवंत श्रद्धांजलि था, जिसने ऐतिहासिक ग्लास-हाउस को रंगों और रचनात्मकता के एक जीवंत कैनवस में बदल दिया। वनस्पति प्रेमियों और साहित्य के शौकीनों के लिए सपरिवार आदर्श दिन बिताने के लिए एक उत्तम अवसर था।

इस शो का केंद्रीय थीम 'तेजस्वी – विस्मय' प्रसिद्ध कन्नड़ लेखक, पर्यावरणविद और फ़ोटोग्राफर के. पी. पूर्णचंद्र तेजस्वी (1938-2007) को समर्पित था, जो उनके अनोखे दृष्टिकोण को फूलों के माध्यम से दर्शाती है; तेजस्वी ने अपने काम को पश्चिमी घाट और प्रकृति के रहस्यों में गहराई से जड़ दिया और इस शो ने इसे खूबसूरती से दर्शाया।

के. पी. पूर्णचंद्र तेजस्वी का जन्म 8 सितंबर 1938 को प्रसिद्ध कन्नड़ कवि कुवेम्पु के घर हुआ, जिन्हें साहित्य में उनके अनूठे 'बंदया' (विरोध) शैली और 'नव्य' (आधुनिक) लेखन के लिए जाना जाता है।

तेजस्वी ने कविता, लघुकथा, उपन्यास, नाटक और विज्ञान कथाएं लिखीं। उनकी प्रमुख रचनाओं में

कारवालो, जुगारी क्रॉस,
और अबाचूरीना पोस्ट ऑफिसु शामिल हैं। उन्होंने कन्नड़ साहित्य में "नव्य" काल में अनूठी छाप छोड़ी और विरोध साहित्य (बंदया साहित्य) की शुरुआत की। वे उत्साही पक्षी-विज्ञानी और प्रकृतिवादी थे, जो मुदिगेरे में कॉफ़ी बागान में रहते थे। उन्हें राज्योत्सव पुरस्कार, कन्नड़ साहित्य अकादमी पुरस्कार और उन्हें 'चिदंबरा रहस्य' के लिए 1987 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। किसान और कार्यकर्ता के रूप में उनकी भूमिका सबसे आकर्षक पहलुओं में से एक है, उनकी रचनाएँ ग्रामीण जीवन और प्रकृति का सजीव चित्रण करती हैं। वर्ष 1970 के दशक की शुरुआत में, कर्नाटक के छोटे कॉफी उत्पादकों को कॉफी बोर्ड के माध्यम से अपनी उपज बेचने के लिए मजबूर किया गया था, जो तेजी से कठोर और सरकार समर्थक बन

गया था। किसानों को गिरती कीमतों, देरी से भुगतान और अनिवार्य पूलिंग का सामना करना पड़ा। तेजस्वी ने इस प्रणाली के आगे झुकने से इनकार कर दिया।

"मैं अपनी फसल बाजार में बेचूंगा," उन्होंने लिखा, और ऐसा ही किया, और अन्य उत्पादकों को इस एकाधिकार को चुनौती देने के लिए प्रेरित किया। उनके लेखन और सार्वजनिक समर्थन ने कर्नाटक के कॉफी बाजार को खोलने में मदद की, जो राज्य के कृषि इतिहास में महत्वपूर्ण घटना है।

इस फ्लावर शो में ग्लास हाउस के अंदर मुख्य आकर्षण तेजस्वी के जीवन और कार्यों से प्रेरित विशाल फ्लोरल था, जिसमें 90,000 गुलाब और क्रिसेंथेमम (गुलदाउदी) का उपयोग करके उनके प्रतिष्ठित घर 'निरुत्तरा' की प्रतिकृति और पश्चिमी घाट के साथ उनके बंधन को दर्शाने वाला एक फूलों का पहाड़ सम्मिलित था। फ्लोरल इंस्टॉलेशन के रूप में उनके घर, स्कूटर, 'कार्वालो' के पात्र थे, जिन्हें लाखों फूलों का उपयोग करके जीवंत किया गया था जैसे किवी डॉग और मंडन्ना, और वन्यजीवों के फूलों के प्रतिरूप प्रदर्शित थे।

कन्नड़ के अधिकांश पाठक, के. पी. पूर्णचंद्र तेजस्वी को उनके लेखन में रहने वाले लोगों और जीवों के माध्यम से याद करते हैं। ग्लास हाउस की परिधि पर कुवेम्पु, शिवाराम

करणथ, राममनोहर लोहिया और राजेश्वरी तेजस्वी की प्रतिमाएं लगाई गई थी, जो उनके विचारों को आकार देने वाले गुरुओं, समकालीनों और साथियों को दर्शाती थीं। प्रकृति और पर्यावरण की छटा बिखरते फ्लोरल पहाड़, झरना, और जीआई-टैग्ड फसलें उनके पश्चिमी घाट, जंगलों और वन्यजीवों के साथ गहरे बंधन को दर्शाते थे। मंडन्ना और करियप्पा, मलनाड के परिदृश्य में लड़े हुए पात्र, और पक्षी, कीट और जानवर जिन्हें तेजस्वी ने दुर्लभ ध्यान से लिखा था। फूलों से निर्मित पक्षियों, कीटों और जानवरों के मॉडल वन्य डायोरामा के साथ थे, जो मलनाड पारिस्थितिकी तंत्र को जीवंत कर रहे थे।

के. पी. पूर्णचंद्र तेजस्वी की साहित्यिक विरासत के बारे में बताने के लिए इस फ्लावर शो में युवा पीढ़ी को उनके विचारों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिचित कराने के लिए स्किट और क्यूआर कोड के साथ गहराई से जोड़ने का प्रयास किया गया। फ्लावर शो में आने वाले सभी

लोग उनके जीवन और काम के बारे में विस्तार से जानने के लिए दिए गए क्यूआर कोड स्कैन कर सकते थे।

तेजस्वी के तकनीक और ज्ञान प्रसार के प्रयोगों पर विशेष ध्यान दिया गया था। उन्होंने कन्नड़ कंप्यूटिंग और सॉफ्टवेयर परियोजनाओं में योगदान दिया था, जिससे भाषा को डिजिटल युग में प्रवेश करने में मदद मिली। तेजस्वी के पुस्तकों, लेखन और पात्रों से घिरे कार्टून-शैली के चित्र उनके विज्ञान, इंजीनियरिंग और पर्यावरण अध्ययन में रुचि को दर्शाते थे।

के. पी. पूर्णचंद्र तेजस्वी फाउंडेशन ने उनके जीवन और कार्यों को सटीक रूप से प्रस्तुत करने में मदद की और उनकी पुत्रियों, मित्रों ने इस फ्लावर-शो को आकार दिया। हॉर्टिकल्चर विभाग ने तेजस्वी के उपन्यासों पर आधारित स्किट भी प्रस्तुत की, जो कुवेम्पु और बसवन्ना के बाद फ्लावर शो के साथ होने वाला तीसरा ऐसा प्रदर्शन है।

इस प्रकार प्रकृति के सुंदर फूलों की रंग एवं सुंगध ने साहित्यकार को साथ लेकर युवा पीढ़ी के लिए जीवंत कर दिया है।

ललित निबंध

अंसुवन जल सींचि सींचि

डॉ. गरिमा संजय दुबे

सहायक प्राध्यापक (अंग्रेज़ी साहित्य), सॉफ़्ट स्किल्स ट्रेनर, मोटिवेशनल स्पीकर

drgarimadubey801@gmail.com

अश्रुओं की भी क्या कोई परिभाषा हो सकती है! आँख का पानी तो भिन्न अर्थों में लिया जाएगा, अश्रु ही कहना उचित है। नयन नीर - सबसे पवित्र जल। जाने कैसा है यह नमकीन पानी जो आँख से बरसता है। निर्मल मन वालों की आँखें जब तब भीग जाती हैं: कोई दृश्य देखकर, किसी की पीड़ा देखकर, किसी की प्रसन्नता देखकर, कुछ पा लेने पर, कुछ खो देने पर, उदासी में, प्रेम में, भक्ति में, आह्लाद में, दुःख में, शोक में, पीड़ा में। यह कैसा जल है जो आंखों से बरस पड़ता है। भाव विगलित हो कंठ रुंध जाए और आँखें बरस पड़े, भाव भिन्न भिन्न हो और यह बरसे किंतु इसका प्रभाव एक ही होता है, चाहे जिस भाव से बरसे अश्रु नयन से, उसकी फलश्रुति एक ही है, निर्मल मन, शांत स्थिर मन:स्थिति। कहीं पढ़ा था, जाने किसने कहा था, हंसने के बाद मनुष्य में एक आलस, एक प्रमाद जन्म लेता है, रो लेने पर मनुष्य का मन हल्का हो जाता है, जैसे किसी ने मन के दर्पण पर पड़ी धूल को, अवसाद को, पीड़ा को धो दिया हो। यह भी माना जा सकता है कि अश्रु मन को निर्मल कर देते हैं या अश्रु निर्मल मन की थाती हैं।

आँख का भीगना, बरबस बरस पड़ना अशक्त मन की निशानी नहीं है। समय ऐसा आन पड़ा है कि हम भावुकता और अश्रु दोनों पर संदेह करने लगते हैं। भयावह अट्टहास पर संदेह नहीं होता, किसी के बहते अश्रुओं पर होता है। अश्रुओं पर संदेह करने लगे जब किसी का मन तो समझ लीजिए उसके भीतर का कलुष, बौद्धिक आतंक बहुत बढ़ गया है। और उस बुद्धि की कलुषता में वह अश्रुओं की निर्मलता चीन्ह नहीं पाता, बहुधा अधिक बुद्धि आपके भावों को सोख लेती है।

हाँ, यह भी एक सत्य है कि धूर्त प्रकृति मनुष्यों ने अश्रुओं का ही तो आश्रय लिया है, किसी को पीड़ा पहुंचाने को, किसी के साथ छल करने को। जब किसी उपादान की महत्ता इतनी बढ़ जाए कि वह निर्मलता, पवित्रता का पर्याय हो जाए तब उसके दुरुपयोग की आशंका भी बढ़ जाती है; तब धूर्त प्राणी आश्रय लेते हैं उसका, उन्हें पता है कि इस उपादान पर तो कोई संदेह नहीं करेगा, क्योंकि यह तो सत्य का पर्याय हैं, वे उसका आश्रय ले उस उपादान को कलंकित करते हैं। जैसे

बाबा भारती को डाकू खड्गसिंह रोगी बनकर लूटने चला था, बाबा भारती ने कहा था किसी को रोगी, पीड़ित बनकर छल मत करना अन्यथा लोग वास्तविक रोगी, पीड़ित पर भी संदेह करने लगेंगे। जिस दिन ऐसा हो गया कि इस संसार ने आंसुओं पर संदेह करना प्रारंभ कर दिया उस दिन शेष रह क्या जाएगा। मन की कोमलता से द्रवित हो आँख छलछला आएं, प्रसन्नता से आँख भीग जाएं, अपने आराध्य की आराधना में आँख बरस पड़े, कोई भावुक क्षण में आँख से दो पवित्र बूंदें टपक पड़ें और उन बूंदों पर कोई व्यंग्य से मुस्कुरा दे, उन बूंदों पर कोई कटाक्ष कर दे, उन बूंदों पर कोई संदेह करने लगे तो जान लीजिए मन का भाव स्रोत सूख गया है। जो आंसुओं की नमी से न भीग सके वह मन ही क्या, जिसे भीगे नयनों का भाव न समझ आए वह मनुज ही क्या। हां, होते हैं कुछ असुर प्रवृत्ति मनुष्य भी जिनके लिए मनुष्य के आंसू और और उनकी पीड़ा ही उनका आहार होती है। किंतु अश्रु जब अपनी शक्ति का संधान करते हैं, पीड़ा का संघनित रूप जब सामने आता है तो असुरों की सत्ता दहल जाती है। शिव की आँख से गिरा सती विलाप का अश्रुजल प्रलय लाता है, वह रुद्राक्ष बन सदा के लिए पूजनीय भी हो जाता है, शिव के स्पर्श से कल्याण हो जाता है तो फिर शिव के नेत्र से गिरा वह अश्रु शिव तत्व लिए होगा ही।

श्रीराम की आँख से गिरा अश्रु रावण के विनाश की भूमिका रचता है, द्रौपदी, सीता की आँख से गिरे अश्रुओं ने इतिहास बदल दिया था, मनुष्य को आंसुओं से डरना चाहिए। जाने कैसा युग आया था जो आज तक असंख्य आंसुओं के सैलाब से भी नहीं पसीजा, इस युग में महिषासुर होता तो वह भी लज्जा से कहीं अपना मुंह छुपा लेता, आधुनिक मानव ने आसुरी प्रवृत्ति के जो कीर्तिमान स्थापित किए हैं वे तो बड़े से बड़े असुरों को भी लज्जित कर दें। यह कलयुग का ही प्रभाव है कि अब आंसुओं से कोई डरता नहीं।

यह अश्रु पीड़ा में औषधि का काम करते हैं, प्रसन्नता में उत्सव का। बालक के जन्म की पीड़ा से जूझती प्रसव वेदना में अश्रु स्वेद से क्लांत मां, शिशु के जन्म के बाद उसे देखते ही रो पड़ती है, जन्म के पहले भी तो रो रही थी, जन्म के बाद भी रोती है। किंतु कितना भेद है दोनों रुदन में, एक में पीड़ा है, दूजे में प्राप्ति, अश्रु दोनों जगह विद्यमान हैं, समान रूप से किंतु भाव परिवर्तन से उसका प्रभाव बदल जाता है। बच्चे का रुदन अपनी उपस्थिति की घोषणा है। वह जब तक शिशु है उसका रुदन, उसके अश्रु एक सामान्य प्राकृतिक घटना है किंतु बाद में कुछ आयु बढ़ने पर उसके रुदन के अर्थ बदलने लगते हैं ।

बच्चे की आँख में किसी पीड़ा के आंसू इस संसार की सबसे बड़ी त्रासदी है। और कहने में बड़ा कष्ट अनुभव होता है कि आधुनिक युग में हर बच्चे की आंख में आंसू हैं। बचपन, यौवन सब अश्रुओं से भरा हुआ, बच्चा अकेला, आँख में आंसू लिए अपने माता पिता की बाट जोहता है, आँख में आंसू लिए दिन का एक बड़ा समय अपनों से दूर बिताता है, अपनी पीड़ा कह नहीं पाता, कभी क्रोधी, कभी उन्मादी, कभी जिद्दी होकर रोता है, हम उसके आंसुओं की भाषा कहां समझ पाते हैं, उसे और कुछ नहीं चाहिए, बस थोड़ा समय, थोड़ा प्यार। हमारी आंसुओं की भाषा समझने की शक्ति कुंद होती जा रही है, आंसुओं की कोई लिपि भले ही न हो, आंसुओं की भाषा तो होती है ना, बोली तो होती है न। भाव लिपियों पर कहां आश्रित होते हैं, वह तो ढूँढ़ ही लेते हैं शब्दरहित उपादान, इन शब्द रहित उपादानों से वे और अधिक प्रभावी ढंग से अपनी उपस्थिति प्रमाणित करते हैं।

जो आंसुओं की भाषा न समझ सके उसका पढ़ना क्या और लिखना क्या। हम तो पीड़ा के व्यापारी हैं, आंसू पोंछना हमारा कार्य नहीं, हम तो आंसू देने में विश्वास करते हैं। किंतु क्या ऐसा हो सकता है कि हम प्रसन्नता में छलकने वाले आंसू दान कर सकें। आराध्य की आराधना के रोमांच में बरसने वाले आंसुओं का दान किया जा सके तो कितना भला हो, प्रेम में बरसते अश्रु हों या वात्सल्य में, किसी भले से गीत को, भजन को सुनते हुए आंसू बरसने लगें, किसी सुंदर दृश्य को देखकर आँख से आंसू गिरें, कभी ईश्वर को, गुरु को, माता पिता को या कि इस सम्पूर्ण सृष्टि को धन्यवाद देते हुए

अश्रुपात होने लगे।

कोई आपके पास आकर रो सके बिना इस भय के कि कहीं आप उसके अश्रुओं पर संदेह तो न करेंगे; क्या आप आँसुओं का मान रखना जानते हैं? क्या हम प्रसन्नता के अश्रुओं का कारण बन सकते हैं? क्या हम प्रेम के, विश्वास के, उदारता के अश्रुओं का सृजन, उत्पादन नहीं कर सकते? उत्पादन या सृजन वस्तुओं का ही तो नहीं होता, भावों का भी तो हो सकता है। जो भाव और अश्रु का सृजन कर सके उससे बड़ा न कोई कलाकार है न कोई विद्वान। बाहर तो बड़ी भीड़ है छद्म उपादानों की, बुद्धि से पराजित होते भावों की; बुद्धि की हिंसा ने जो सबसे बड़ी हानि की है वह है हमारे भाव जगत पर आक्रमण, हमने भावों को विनम्रता को अशक्त होने का पर्याय मान लिया। युग ही ऐसा है हर भली बात पर संदेह होता है और बुरी बात पर चट से भरोसा।

जिन्हें अश्रुओं पर विश्वास नहीं होता वे किसी पर विश्वास नहीं कर सकते। समय की करवट ऐसी है कि अब हर कहीं संदेह है, मुस्कुराहट पर संदेह है, अश्रु पर आक्षेप है, ऐसे में मन के दर्पण रूपी सरोवर से, आँख से बरसने वाली ये पवित्र बूंदें मनुष्य के लिए कितनी आवश्यक हैं यह तय करें। आँख का पानी सूखना यूं भी बहुत सुखद घटना तो नहीं ही है, लगता है आँख का पानी सूख ही गया है, तभी तो यह उत्पात है, तभी तो यह पीड़ा है। रहीम ने 'पानी गए न उबरे मोती मानुष चून' केवल नदियों सरोवरों समंदर में बहने वाले पानी के लिए ही नहीं कहा था, निश्चित ही कहीं उनके मन में आँख के पानी की चिंता भी होगी ही। ठीक है आँख का पानी मर जाने का अर्थ लज्जा की समाप्ति है, लेकिन साथ ही आँख की नमी का सूखना मन को मरुथल बना देगा, धरती के सूखते पानी की चिंता के साथ मन के सूखते जल की चिंता भी कीजिए, विश्वास कीजिए जो मन का जल बचा रहा तो धरती का जल क्या, मनुज का पूरा अस्तित्व बचा रहेगा। करुणा, प्रेम, अनुभूति, वात्सल्य, दुःख, विलाप, शोक, क्लेश कोई भी भाव हो अश्रु शब्दों की कमी पूरी कर देते हैं। कहते हैं जो विधाता ने पीड़ा को पिघला कर अश्रु का रूप न दिया होता तो मनुष्य का मन उस जमी हुई पीड़ा का बोझ न झेल पाता, या तो वह समाप्त हो जाता या विक्षिप्त, घनी पीड़ा को अश्रु द्रविभूत करके मन हल्का कर देते हैं, अश्रु विरेचक की तरह कार्य करते हैं और मन को सांत्वना देते हैं।

मीरा इन्हीं आंसुओं से प्रेम की मधुर बेली उगाती हैं, कैसा विरोधाभास है, खारे पानी से प्रेम की मधुर बेल कैसे? अश्रु और स्वेद अपने भीतर मन का खारापन लेकर निकल जाते हैं और तन और मन को निर्मल कर देते हैं। यही अश्रु जब सखा प्रेम में बरसते हैं तो श्रीकृष्ण की अंखियों से "पानी परात को हाथ छुओ नहीं नैनन के जल सौ पग धोए" - श्रीकृष्ण की आँख से बरसते अश्रुओं ने, उनके खारेपन ने सुदामा के पैरों की पीड़ा हर ली, घाव पर नमक की तिक्तता नहीं, श्रीकृष्ण के प्रेम की मधुरता ने सुदामा के घावों पर औषधि का काम ही किया था। जब जब जिह्वा और शब्द साथ छोड़ देते हैं तब तब अश्रु उन भावों के प्रकटीकरण का बहुत पवित्र साधन बन जाते हैं, अश्रु भावों की वह भाषा है जो कभी भी असत्य नहीं कहती, इसलिए किसी के हास्य पर संदेह भले कर लीजिए, किसी के अश्रु पर संदेह नहीं किया जाना चाहिए।

पुस्तक समीक्षा

स्त्रियां घर लौटती हैं- विवेक चतुर्वेदी

रामेश्वर प्रसाद

शोधार्थी, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, मध्य-प्रदेश
rameshwargarg1008@gmail.com

एक ओर जहां स्त्री प्रगति पर अग्रसर है तो वहीं दूसरी ओर वे गरिमा और अधिकारों से आज भी वंचित हैं। स्त्रियों का अपमान और शोषण आज भी जगह- जगह पर होता रहता है जिसकी खबरें आये दिन सुनायी देती रहती हैं। यदि हमारे समाज में यह स्वीकार किया जाता है कि स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी है, तो हमें यह भी स्वीकारना ही पड़ेगा कि वह केवल देह तक की ही अर्द्धांगिनी नहीं है बल्कि समूचे मानव- संसाधनों और सम्मान की भी अधिकारी है। इसके प्रति आज की स्त्री सजग भी नज़र आती है और अपने अधिकारों के लिए लेखन से लेकर अन्य माध्यमों के द्वारा भी अपनी आवाज उठाती रहती है। आज यह बात स्पष्ट रूप से हमारे सामने परिलक्षित होती है कि अब हम स्त्री को देवी की संज्ञा देकर और समय तक उसे नहीं ठग सकते। आज के दौर में स्त्रियों के अधिकारों और गरिमा के लिए केवल स्त्रियां ही नहीं बल्कि पुरुष भी बढ़- चढ़कर अपनी कलम चला रहे हैं, जिनमें से एक महत्वपूर्ण कवि विवेक चतुर्वेदी जी हैं जो स्त्री विषयक नया दृष्टिकोण हमारे सामने लेकर आते हैं, जिनके

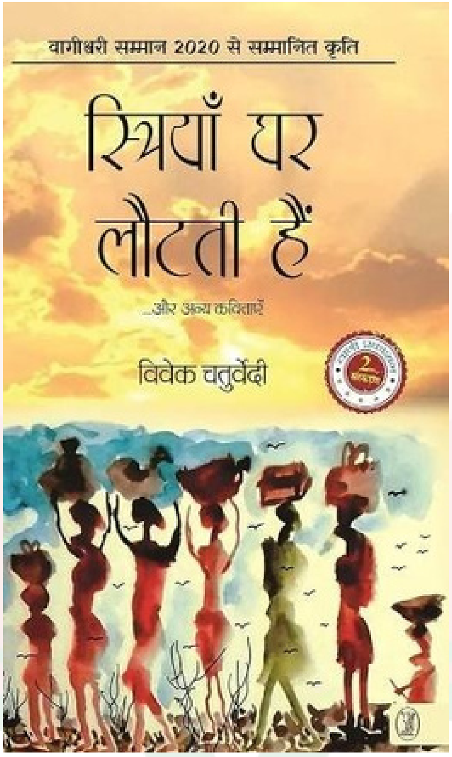

विषय में *वरिष्ठ आलोचक स्मृति शुक्ल* जी लिखती हैं, "कवि ने परंपरागत पुरुष के दृष्टिकोण से बिलकुल हटकर एक स्त्री के कोमल और संवेदनशील हृदय में पैठकर या कहें कि स्वयं उस कोमल और संवेदनाओं से आपूरित मनोभूमि में गहरे उतरकर अर्थात् अपना मानसिक रूपांतरण करके नारी की वेदना, उसके प्रेम, उसके ममत्व, उसकी आकांक्षा, उसके अंतर्द्वद्व और उसकी पीड़ा को वाणी दी है।"(साभार - गद्यकोश)

सन् 1969 ईस्वी. में *संस्कारधानी* जबलपुर में जन्मे कवि विवेक चतुर्वेदी जी स्त्री- गरिमा और अधिकारों के प्रति नया और गहरा संस्कारबोध रखने वाले कवि हैं जिनका पहला ही कविता संग्रह *'स्त्रियां घर लौटती हैं*. साहित्यिक जगत में इस कदर धूम मचाया कि इस संग्रह को अपने पहले संस्करण(2020) पर ही *वागीश्वरी सम्मान* (2020) से नवाज़ा गया। विवेक चतुर्वेदी ऐसे कवि हैं जो अपनी कविताई में भोगे हुए यथार्थ को दर्शाते हैं न कि *कोरी भावुकता और कल्पना* को, और कल्पना है भी तो वह एक *विराट चेष्टा* की कल्पना है। वरिष्ठ कवि *अरुण कमल* श्री चतुर्वेदी के विषय में कहते हैं कि --

"विवेक चतुर्वेदी की कविताओं में सघन स्मृतियां हैं, भोगे हुए अनुभव हैं और विराट कल्पना है; इस प्रकार वे भूत, वर्तमान और भविष्य का समाहार कर पाते हैं "
भूमिका से('स्त्रियां घर लौटती हैं')

श्री चतुर्वेदी की काव्य- चेतना इतनी प्रखर और विस्तृत है कि स्त्री के हरेक रूप को बड़ी गहराई और संवेदना से व्यक्त करती है, जिसमें स्त्री मां, पत्नी/प्रेमिका, गृहिणी तथा अन्य कई रूपों में अपनी जिम्मेदारी सम्भालती नजर आती है। एक कविता देखिए -

"स्त्री बच्चे की भूख में
रोटी बनकर लौटती है
स्त्री लौटती है दाल- भात में,
टूटी खाट में,
जतन से लगाई मसहरी में,
वो आंगन की तुलसी
और कनेर में लौट आती है।"
(कविता संग्रह 'स्त्रियां घर लौटती हैं' पृष्ठ 11)

आज जब विमर्शों के नाम पर मंचों से बड़े-बड़े भाषण दिये जाते हैं और उसका वास्तविक स्वरूप केवल यूटोपिआई ही रह जाता है तो कवि इस पर भी अपनी चिंता व्यक्त करता है। इस पर कवि कहता है कि इससे अच्छी तो वही स्थिति थी जो नेपथ्य में की है। कवि इस ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित कराना चाहता है कि ऐसे विमर्श का क्या ही अर्थ है जिसके केंद्र में केवल और केवल स्त्री के मांसल होंठ,जांघ और नितम्ब हों न कि उसकी बौद्धिक चेतना, हृदय की भावना और जीवन की सबसे ऊंची उड़ान। कवि इस मानसिकता के पीछे विश्वविद्यालयों में बैठे बौद्धिक उस्तादों की भी जमकर खबर लेता है और व्यंग्य करते हुए उन्हें *बद्ज़ुबान लौंडे* तक की संज्ञा दे देता है जो कई मायनों में बिलकुल सही भी प्रतीत होता है , पंक्ति देखिए --

"मंच पर आभासी था
स्त्री विमर्श
वास्तविक था वो नेपथ्य में
उस विमर्श में थे
स्त्री के स्तन ही स्तन
फूले और मांसल
ओंठ थे, जांघें थीं, नितम्ब थे
न था मस्तिष्क, न हृदय
न लिखने को हाथ
न कंचनजंघा पर चढ़ने को पैर
वहां अदीब थे,आला हुक़्मरान
....थिंकर....
यूनिवर्सिटी के उस्ताद थे
पर थे सब बदज़बान लौंडे"
(कविता संग्रह 'स्त्रियां घर लौटती हैं' पृष्ठ 28)

जब कवि, स्त्री को केवल भोग की वस्तु समझे जाने के बजाय उसके बौद्धिक, आत्मीय और बड़ी से बड़ी उपलब्धियां हासिल करने पर हमारा ध्यान इंगित कराता है तो *आपहुदरी* आत्मकथा की प्रसिद्ध लेखिका रमणिका गुप्ता की एक बात सामने आती है जिसमें वो कहती हैं --

"नदी को न पत्थर बांध सकते हैं,न बांध। नदी तब तक नहीं रुकती जब तक उसके पानी का स्रोत खत्म नहीं हो जाता और मैंने अपने भीतर की स्त्री के स्रोत को कभी ख़त्म नहीं होने दिया। चूंकि मैं उसे नदी मानती हूं, जिसमें सब अपनी गंदगी धोकर चले जाते हैं, पर वह सतत स्वच्छ अबाध गति से बहती रहती है।"
(आत्मकथा 'आपहुदरी' पृष्ठ 14)

आज के इक्कीसवीं सदी में जी रहा समाज जो अपने आप को *पुनर्जागरण* और *नवजागरण* का यात्री बताते हुए जरा भी थकान नहीं महसूस करता कवि उस पर भी एक कविता के माध्यम से अपना ध्यान आकृष्ट करता है, जिसमें वह स्त्री- पुरुष के उन कपड़ों का जिक्र करता है जो प्रायः शरीर के आन्तरिक हिस्सों में धारण किए जाते हैं। इस जिक्र में कवि उद्धृत करता है कि कैसे आज के समय में भी आंगन अथवा छत पर लगी हुई डोरी पर स्त्री और पुरुष के सूखने के जो गीले वस्त्र डाले जाते हैं उसमें भी ठीक-ठाक भेदभाव होता है क्योंकि पुरुष के सामान्य वस्त्र और अंग- विशेष के वस्त्र सभी समान रूप से फैले होते हैं जबकि स्त्री के अंग- विशेष के वस्त्रों को किसी न किसी बड़े और सामान्य कपड़े में छिपाकर सुखाया जाता है। यह विकृत मानसिकता का द्योतक नहीं तो और क्या है! जिस प्रकार पर्दा प्रथा के माध्यम से सम्पूर्ण स्त्री शरीर से भेदभाव होता आया है वैसे ही उसके कपड़ों से भी। कुछ पंक्तियां देखिए -

"लड़की के कुर्ते को
किनारे कर
चढ़ गई है लड़के की जींस
झुक गई है जिससे पूरी डोरी
उस बांस पर
जिससे बांधी गई है डोरी
लहरा रहे हैं पुरुष अंत:वस्त्र पर
दिखाई नहीं देते
महिला अंत: वस्त्र"
(कविता संग्रह *'स्त्रियां घर लौटती हैं...* पृष्ठ 39)

अपने लेखन में हैं कहीं उससे ज्यादा अपने व्यवहार में भी। मुझे याद है कि हाल ही में वरिष्ठ कहानीकार *ज्ञानरंजन* जी के स्वर्गवास के उपरांत उनकी याद में एक श्रद्धांजलि सभा आयोजित की गई थी जिसमें साहित्य- जगत की कई प्रबुद्ध हस्तियां मौजूद थीं जिनमें से एक थे वरिष्ठ कथाकार आदरणीय *राजेन्द्र दानी* जी। जब सभा में श्रद्धांजलि देने की बारी श्री चतुर्वेदी की आयी तो उन्होंने बड़ी ही विनम्रता पूर्वक श्री राजेन्द्र दानी जी का नाम लेते हुए कहा कि हम- सब की तरफ़ से *'दानी'* जी अर्थात् श्री दानी जी बोल चुके हैं ज्ञान जी पर तो मैं (श्री चतुर्वेदी) उनके बारे में अतिरिक्त क्या बोलूंगा! यहां इसका यह अर्थ नहीं है कि श्री चतुर्वेदी के पास 'ज्ञान' जी से जुड़े संस्मरणों का अभाव था या शब्द संपदा की कोई कमी थी बस मूल बात ये थी कि हमें अपने से वरिष्ठ व्यक्ति के प्रति कैसा विवेक/व्यवहार रखना चाहिए यह श्री चतुर्वेदी से जरूर सीखना चाहिए। इसी काव्यचेतना और विनम्रता के वशीभूत होकर प्रसिद्ध कवि *आलोक धन्वा* जी श्री चतुर्वेदी के लिए कहते हैं, " असाधारण कविताएं हैं विवेक की, आपने एक नई काव्यभाषा भी कविता और समाज के हित में रची है जो सघन अनुभूति के निर्झर जैसी है। साथ ही विवेक ने नये काव्य धरातलों को बहुत प्रेरित किया है। मुझे गहरा स्नेह है विवेक से..... उन्हें मेरा आशीष।"

(*भूमिका से* 'स्त्रियां घर लौटती हैं')

यद्यपि श्री चतुर्वेदी की कविताई में बहुत गहराई है लेकिन व्याकरणिक त्रुटियों का भी बोलबाला है जैसे कि - पूर्ण विराम, अर्द्ध विराम तथा इसी प्रकार की अन्य व्याकरणिक त्रुटियां। स्त्री के प्रति विवेक जी की काव्यसंवेदना बहुत ही करुण और तार्किक भी है लेकिन कहीं- कहीं पंक्तियां इतना विस्तार दे लेती हैं कि लय टूटती नजर आती है। उदाहरण के लिए --

'और गोल पृथ्वी से......... पृथ्वियां'

श्री चतुर्वेदी स्त्री संवेदना को बहुत बारीकी से उद्धृत करते हैं लेकिन कहीं - कहीं उनका पूर्वाग्रह भी नजर आता है खासकर यदि ग्रामीण जीवन के संदर्भ में देखा जाय (शहरों के लिए उनकी बात कुछ सीमा तक सही भी है लेकिन भारत जैसे देश की अस्सी प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है),क्योंकि गांव में रहने वाला एक सामान्य किसान जो मूलतः किसान है और अतिरिक्त आय के लिए कुछ छोटे किस्म के रोजगार या धंधे में भी संलग्न है वह धंधे और रोजगार से लौटकर पूरी तरह सोफे पर ही आराम नहीं करता है अथवा आते ही तुरंत सोने नहीं लगता क्योंकि उसके पास खेती- किसानी तथा घर की अन्य जिम्मेदारियां भी हैं जैसे कि भीषण बरसात और ठंड में भी कृषि कार्य जिसमें कड़ाके की ठंड में सिंचाई से लेकर गंभीर हिंसात्मक पशुओं तक से रात के अंधेरे में सामना करना पड़ता है। ---

"पुरुष लौटते हैं बैठक में
फिर गुसलखाने में
फिर नींद के कमरे में"

यद्यपि कवि की यौनिक- चेतना भी बहुत ही गहन रूप में हमारे सामने आती है लेकिन उसमें भी कहीं- कहीं एकतरफा रूप नजर आता है ।'स्त्री विमर्श' कविता में जब कवि पुरुष वर्ग खासकर बुद्धिजीवी पुरुष वर्ग पर 'हवशी' होने का आरोप लगाता है, जो कई मामलों में सही भी प्रतीत होता है लेकिन कवि स्त्री समाज की उन वेश्या मानसिकताओं पर प्रकाश नहीं डालता जो अवसर का लाभ लेने के लिए पुरुष समाज को खुद बिस्तर पर आमंत्रित करके जिस्म का सौदा करती हैं, जिसमें गलती केवल पुरुष पक्ष की ही नहीं है, जिसके कई उदाहरण हैं, जहां आये दिन हंगामे होते रहते हैं, जैसे - मीडिया हाउस, राजनीति, विश्वविद्यालय और फिल्म जगत आदि। इसके अलावा आज का समय ऐसा भी है जिनमें कई सोशल मीडिया माध्यमों से महिलाएं अपनी शारीरिक तृप्ति के लिए पैसे के बदले प्लेब्वॉय जैसी सुविधाएं लेती हैं जो पूरा सही नहीं है तो पूरा ग़लत भी नहीं क्योंकि जहां आग होती है वहीं धुआं उठता है। आये दिन मसाज केंद्रों पर भी ऐसे छापे पड़ते रहते हैं और पुरुष के साथ ही साथ महिला मानसिकता का भी भांडाफोड़ होता रहता है। स्त्रियों के सामन्ती परिवेश में जो पतन होते हैं उसकी ज़िम्मेदारी केवल पुरुषों की ही नहीं है बल्कि स्त्रियों की भी है, इसी संदर्भ में प्रसिद्ध कवयित्री *सविता सिंह* एक साक्षात्कार में कहती हैं कि --

'मैं हर स्त्री के साथ बहनापा नहीं कर सकती'(साभार - हिन्दवी)

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि विवेक चतुर्वेदी अपने समय के प्रतिबद्ध कवि हैं। श्री चतुर्वेदी स्त्री विमर्श का कोरा ढिंढोरा नहीं पीटते बल्कि उसके अधिकारों और गरिमापूर्ण जीवन के लिए अपने बेहद ही तार्किक कवि- क्षमता का परिचय देते हैं। कहीं- कहीं श्री चतुर्वेदी की दृष्टि संकुचित जरूर नजर आती है लेकिन वह उनके कविदृष्टि को धूमिल नहीं होने देती। श्री चतुर्वेदी ऐसे कवि हैं जो अपनी कविताई में गहन वैचारिकी रखते हैं।

पुस्तक समीक्षा

चित्रलेखा रीविजिटेड

रणविजय राव

भारतीय संसद में संयुक्त निदेशक
ranvrao1973@gmail.com

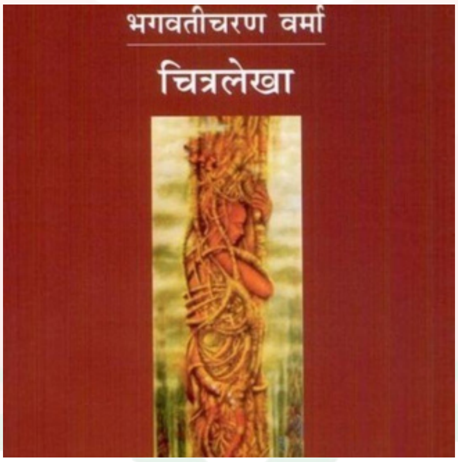

भगवतीचरण वर्मा की कालजयी रचना है, 'चित्रलेखा' जो आज भी उतनी ही लोकप्रिय, पठनीय और प्रासंगिक है जितना तब थी जब यह पहली बार 1934 में प्रकाशित हुई थी। सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य के शासन काल के एक विद्वान भोगी सामंत और एक योगी के बीच पाप की परिभाषा खोजते दो शिष्यों और एक विद्वान नर्तकी के संबंधों को समेटती यह कथा अपने चुस्त संवादों के बल पर क्लासिक रचना बन गई है। प्रत्येक दृश्य का वाचक वह कथा-पात्र है, घटना अनुभूति के स्तर पर जिसके सबसे करीब घट रही होती है। इस उपन्यास के कथानक में रवानगी है, जो चकित कर देती है। गजब की पठनीयता लिए उपन्यास के वर्णन-प्रसंगों में स्थितियों की गंभीरता स्पष्ट करते हुए उपन्यासकार ने इसे और अधिक रोचक और मार्मिक बना दिया है।

महाप्रभु अपने दोनों शिष्यों श्वेतांक और विशालदेव को क्रमशः सामंत बीजगुप्त और योगी कुमारगिरी के पास सेवक के रूप में रहकर इसका पता लगाने के लिए छोड़ आते हैं कि पाप क्या है। दोनों शिष्य नितांत भिन्न जीवनानुभवों से गुज़रते हैं और इसलिए उनके निष्कर्ष भी भिन्न हैं। उपन्यास की प्रमुख पात्र चित्रलेखा के माध्यम से उपन्यासकार ने यह बात स्पष्ट रूप से रखी है कि व्यक्ति पूर्णरूपेण परिस्थितियों का दास होता है। वह प्राकृतिक नियमों से दूर जाकर शांत नहीं रह सकता; इस संदर्भ में कुमारगिरी और चित्रलेखा के बीच का संबंध उल्लेखनीय है। कथाक्रम के अनुसार ही पाप-पुण्य के अतिरिक्त साधना-वासना, माया-मोह, प्रेम-इच्छा, भोग-विलास, विजय-पराजय, धर्म-नीति, अच्छे-बुरे को भी परिभाषित किया गया है। महाप्रभु श्वेतांक को भोग-वासना में लिप्त सामंत बीजगुप्त के पास छोड़ते हुए कहते हैं, "इस वैभव को भोगों और फिर पाप का पता लगाने का प्रयत्न

करो। ध्यान रखना कि अच्छी वस्तु वही है जो तुम्हारे वास्ते अच्छी होने के साथ ही दूसरों के वास्ते भी अच्छी हो।"

इस उपन्यास को पढ़ते समय यह भी स्पष्ट होता है कि साधना और वासना दोनों का लक्ष्य है - जीवन में सुख-शांति प्राप्त करना। साधना में संसार से विरक्ति है। कुमारगिरि योगी है। उसका दावा है कि उसने संसार की समस्त वासनाओं पर विजय पा ली है। दूसरा है, सामंत बीजगुप्त। वह भोगी है। उसके हृदय में यौवन की उमंग है और मादकता की लाली। रत्नजड़ित मदिरा के पात्रों में ही उसके जीवन का सारा सुख है। कुमारगिरि के तेज और ज्ञान से प्रभावित चित्रलेखा उससे दीक्षा लेना चाहती है। कुमारगिरि द्वारा स्त्री को अंधकार बताए जाने पर चित्रलेखा कहती है, "योगी! तुम भूल रहे हो। स्त्री शक्ति है, सृष्टि है, जिसे संचालित करने वाला व्यक्ति योग्य है। वह विनाश है, यदि उसे संचालित करने वाला व्यक्ति अयोग्य है। इसलिए जो व्यक्ति स्त्री से भय खाता है, वह या तो अयोग्य है या कायर है।"

पाटलिपुत्र की असाधारण सुंदर नर्तकी चित्रलेखा का भोग-विलास में लिप्त सामंत बीजगुप्त से प्रेम हो गया। जैसे-जैसे समय बीतता गया, वह कुमारगिरि के प्रति भी आकर्षित होने लगी। जब सामंत मृत्युंजय अपनी पुत्री यशोधरा का बीजगुप्त से विवाह का प्रस्ताव लेकर आए तो उसे बीजगुप्त के जीवन से निकलने का जैसे अवसर मिल गया। बीजगुप्त बहुत ही आहत हुआ। प्रेम में त्याग क्या चीज होती है, यह भी इस उपन्यास में बखूबी दिखाया गया है। चित्रलेखा अपने जीवन में शांति चाहती थी। इसलिए उसने कुमारगिरि से दीक्षा ली। पर साधना में लीन योगी कुमारगिरि धीरे-धीरे सांसारिकता की ओर बढ़ने लगा। चित्रलेखा ने अनुभव किया कि यह योगी तो बहुत ही कमजोर है, दुर्बल है।

इस उपन्यास में भगवतीचरण वर्मा यह संदेश देने में सफल रहे हैं कि प्रेम यौवन और सौंदर्य की ऐसी दीप्ति है जो स्त्री और पुरुष को एक-दूसरे से बांधे रखती है। प्रेम एक ओर मुखर और दूसरी ओर मौन तो हो सकता है लेकिन प्रेम कभी देर तक इकतरफा नहीं रह सकता। इसके विपरीत सम्मोहन इकतरफा ही होता है और पानी के बुलबुले की तरह एक झटके में टूट जाता है।

अंत में, दोनों शिष्य श्वेतांक और विशालदेव अलग-अलग परिस्थितियों में हुए अपने-अपने अनुभवों को गुरु महाप्रभु रत्नाम्बर के समक्ष रखते हैं। और गुरु यही निष्कर्ष देते हैं, "संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। मनुष्य परिस्थितियों का दास है, फिर पाप और पुण्य कैसा? कुछ सुख को धन में देखते हैं, कुछ मदिरा में देखते हैं, कुछ व्यभिचार में, तो कुछ लोग त्याग में... हम न पाप करते हैं और न पुण्य, हम केवल वह करते हैं जो हमें करना पड़ता है।"

इस उपन्यास को पढ़ते हुए चेतन और अचेतन मन के सारे दरवाज़े एक साथ खुल जाते हैं। रोचकता, रहस्य, प्रेम, सम्मान, पाप-पुण्य, इच्छा-अनिच्छा, भोग-योग, साधना-वासना सब कुछ हम इस उपन्यास में एक साथ हासिल करते हैं, शायद यह इस उपन्यास का सबलतम पक्ष है।

पुस्तक समीक्षा

संतोष श्रीवास्तव का कहानी संग्रह ‘इक्कीसवां मिनट’

डॉ. नीलिमा रंजन

kalamkar.santosh@gmail.com

प्रतिष्ठित और पुरस्कृत लेखिका संतोष श्रीवास्तव का रचना संसार विस्तृत और विविधतापूर्ण है; उनकी कहानी, उपन्यास, कविता, स्त्री विमर्श, संस्मरण आदि विधाओं की तीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका उपन्यास ‘कैथरीन और नागा साधुओं की रहस्यमयी दुनिया’ बेस्ट-सेलर में आ चुका है। उनके कहानी संग्रह ‘इक्कीसवां मिनट' (अद्विक पब्लिकेशन-दिल्ली) में 14 कहानियाँ हैं; आत्म कथ्य में वे कहती हैं कि 'मेरे लिए लिखना एक तपस्या है।'

सृजन ऐसा लोकतंत्र है जिसमें लेखक समाज की सच्चाइयों को अपनी शर्तों पर लिखता है, किसी को प्रभावित करने या लुभाने के लिए नहीं लेकिन सामाजिक सरोकार, स्त्री विमर्श संतोष जी की रचनाओं में अनायास ही आ जाता है। इस संग्रह की सभी कहानियाँ समाज के अलग अलग तबकों, अलग अलग परिवारों में पसरे ऊहापोह, पीड़ा, दुख, अपमान, प्रीति और अन्य सभी भावनाओं को लेकर लिखी गई हैं। संतोष जी की नज़र बहुत पैनी है, वे

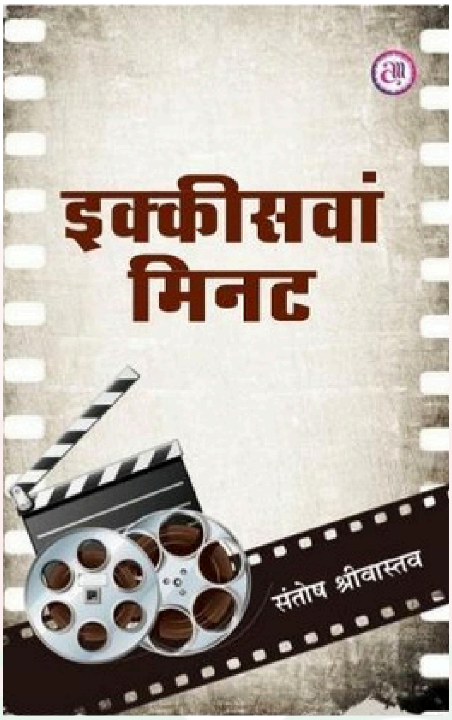

पूरे परिदृश्य से महत्वपूर्ण प्रसंगों को और इन प्रसंगों में से अलग क्षणों को लेकर अकल्पनीय तानेबाने कसती है कि पाठक इसे पढ़ना शुरू कर अधबीच में नहीं छोड़ पाता।

संग्रह की शीर्षक कथा है ‘इक्कीसवां मिनट’ - फिल्मी दुनिया की गला काट प्रतियोगिता - एक स्थापित कलाकार और नवोदित कलाकार की जद्दोजहद। एक नवोदित हुनरमंद कलाकार देवांश उस स्थापित उम्रदराज़ कलाकार नीलाभ से ज़िद कर मिलता है, जो अस्वस्थ हैं किंतु ऐसी बातें जाहिर नहीं की जातीं। देवांश उन्हें एक फ़िल्म छोड़ देने के लिए मनाता है ताकि उसमें वह काम कर स्वयं को सिद्ध कर सके, ख़ामोशी छा जाती है, बीस मिनट की ख़ामोशी, 21वां मिनट, एक नाटकीय स्थिति 'नीलाभ रस्तोगी ने आँखें खोली और कहा, ‘देवांश सफलता किसी से माँगी नहीं जाती, राह खुद बनानी पड़ती है और हाँ यह भी कि योग्यता बिकाऊ नहीं होती। यह फ़िल्म मैं तुम्हारी नज़र करता हूँ।’ यहाँ नीलाभ के देवांश में अपने मृत पुत्र को देखने की भी बात है। पुस्तक का मुखपृष्ठ इस 21वें मिनट का सुन्दर चित्रांकन हैं मानो कोई रील 20 मिनट अटकी रही और 21वें मिनट पर एक झटके से चल पड़ी। एक युवा अभिनेता की ऊर्जा और ज़िद बनाम स्थापित अभिनेता का ठहराव और उसके बावजूद असुरक्षा।

फ़िल्म संसार के वीभत्स सच की एक और कहानी है ‘गुंजन’ जिसमें एक निर्माता अपनी कुत्सित सोचों को हक़ीक़त में बदल देता है और फिर आइटम-सॉन्ग के भँवर में चक्कर खाती गुंजन, जो पुरुषों के जाल में

फँसती चली जाती है। फिल्मी दुनिया की ही एक और कहानी है ‘उड़ान को पंख’ जिसकी नायिका मज़बूत है, ‘भैया तुमने मेरी उड़ान को पंख दिए, अब देखना सारा आकाश मेरा है।’

संग्रह की प्रथम कहानी ‘अमीश के पापा’ 60 वर्षीय पोलियोग्रस्त बेटे अमीश और उसके विवश पिता पंत जी की अत्यंत मार्मिक कथा है। पन्त जी वृद्ध और बीमार हैं फिर भी अमीश को दिव्यांश आश्रम में रखने को राज़ी नहीं है। ‘सुबह उनके कमरे के सामने आशा, पन्त जी के दामाद और एक दो मित्र दिखाई दिए। तो क्या मेरी आशंका सही थी? रात में किसी वक़्त उन्होंने दम तोड़ दिया। दामाद के हाथ में अभ्यांश का फ़ॉर्म था और अमीष की रुदन भरी गों गों जारी थी।’

शिल्पकला की पृष्ठभूमि पर ‘अनकहा’ और चित्रकला की पृष्ठभूमि पर ‘ये इश्क नहीं आसां’ एक ईर्ष्यालु किंतु बड़े उद्योगपति की पत्नी की विवशता की कहानी है। ‘मुक्ति’ नारी विमर्श की एक कथा है - समाज में आसपास दिखाई देने वाली कुचेष्टाओं से भरी। किसी दूसरे की पत्नी पर आसक्ति, अवैध संबंधों की चाह किंतु अपने परिवार के लिए के अलग सोच। नायक क्या नायक कहलाने लायक है, उसका सपाट लहजे में कहना पाठक हृदय को आहत करता है: 'अरे नहीं अनु जी यह संभव नहीं मुझे फ़ैमिली का टूटना गवारा नहीं। आप खुशगवार पलों को बोझिल क्यों बना रही हैं? मैं अंत तक आपका साथ देने के लिए तैयार हूँ।' कहानी में टेबल, गुलदान, पेंटिंग ब्रश तक के रोल्स हैं। हर कहानी में जीवन मूल्य हैं। ये संतोष जी की कहन शैली का ही कमाल है जो यथार्थ को भी रोमांचक बना देती है; स्त्री पात्रों की अस्मिता पर आक्रमण हैं किंतु न हारने देने की शर्त भी है।

हर कहानी में उपन्यास बनने की संभावना ही इन कहानियों को विशिष्ट बनाती है। संवाद सहज हैं, कहानी की आवश्यकता अनुरूप हैं। ये पात्रों की मानसिक स्थिति और चरित्र को विस्तार देते हैं। कहानियां वर्तमान समाज का आईना है और हमें अपने समाज में कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में दिखकर कहानियों को सार्वभौमिकता देते हैं। संतोष जी की भाषा की समृद्धता वर्तमान से तादात्म्य में रहती है; अनेक अछूते कथानकों को अपनी चरित्रों के माध्यम से सुंदर शैली में ढालकर वे पाठकों तक पहुँचाने में सिद्धहस्त हैं।

फ़िल्म समीक्षा

बायोपिक - माइकल

डॉ. कुमारी रोहिणी

दिल्ली विश्वविद्यालय में कोरियाई भाषा की प्राध्यापक

kuhukorea9@gmail.com

संगीत, मंच, भीड़ का पागलपन, चमकदार जैकेट, सफ़ेद मोज़े और दस्ताने, हवा में घूमता-लहराता शरीर - ये सब माइकल की निशानियाँ थीं; मॉडर्न पॉप कल्चर के सबसे बड़े अन्वेषकों में एक बड़ा नाम। लंबे समय तक अश्वेत कलाकारों को लगभग हाशिए पर रखने वाले एम.टी.वी को भी आख़िरकार

माइकल जैक्सन के वीडियो लगातार चलाने पड़े क्योंकि दर्शकों की मांग को अनदेखा करना उनके लिए असंभव था; यह सिर्फ़ एक एल्बम की सफलता नहीं थी, बल्कि पॉप-कल्चर की नस्लीय हैरारकी में दरार पड़ने जैसा था, श्वेतों का आधिपत्य टूट चुका था।

माइकल जैक्सन ने दुनिया को 'परफ़ॉर्मेंस' का असली मतलब समझाया।

यह फिल्म एक इंसान की कहानी का खुलासा ही नहीं कर रही, अपितु उस सामूहिक उदासीनता को भी छू रही है जो दुनिया भर के लोगों के भीतर अब भी ज़िंदा है। माइकल जैक्सन होने का सबसे बड़ा अर्थ यही है कि समय बीत रहा है, पीढ़ियाँ बदल रही हैं, सोच और पसंद बदल रही है लेकिन हमारी यादों में आज भी कोई है जो मूनवाक कर रहा है।

इस बायोपिक की सबसे बड़ी ताक़त जाफ़र जेरेमिया जैक्सन का अभिनय है - उनके चलने का ढंग, हाथों की हरकतें, बोलते समय आंखों में दिखने वाली झिझक, मुस्कान के पीछे छिपी अजीब सी घबराहट - सब कुछ इतना उत्तम है कि लगता है किसी डॉक्युमेंट्री का फ़ुटेज हो। और वही युवा, जो लाखों श्रोताओं को उन्मादपूर्ण उत्तेजना से भर देता है, स्टेज से उतरते ही कितना अकेला और असुरक्षित महसूस करने लगता था। एक तरफ़ पिता का अनुशासन, दूसरी तरफ़ दुनिया की असहज कर देनी वाली निगाहें और बर्ताव, इन दोनों के बीच माइकल का बचपन कहीं दबता चला जाता है; इसलिए जानवरों के साथ उनका लगाव किसी सनक जैसा नहीं लगता। माइकल एक ऐसी दुनिया रच रहे थे जहां उनके रूप-रंग के आधार पर उनका मूल्यांकन न हो।

श्वेत प्रभुत्व वाले समाज में अश्वेतों के परिवार का टिके रहना, सफल होना और अपने अस्तित्व को बचाए-बनाए रखने का डर उनके पिता की महत्वाकांक्षा और बाद में भावनात्मक हिंसा में बदल गया, माइकल के मन में असुरक्षाएँ जन्म ले चुकी थीं। माइकल की माँ का प्यार पिता के वर्चस्व के सामने बेहद असहाय दिखाई देता है। पिता द्वारा उनके लगातार पिक्चर-परफ़ेक्ट दिखने का दबाव उन्हें असहज कर देता है, इसीलिए वे प्लास्टिक सर्जरी और ड्रग्स का सहारा लेते हैं, जो उन्हें आत्मविनाश की ओर ले जाते हैं। माइकल मशहूर चमकदार दस्ताने सिर्फ एक फैशन स्टेटमेंट नहीं थे, जैसा कि अभिनेत्री सिसिली टायसन ने खुलासा किया कि ये माइकल अपने हाथों पर 'विटीलोगो' (सफेद दागों की बीमारी) को छिपाने के लिए पहनते थे। जॉन ब्रैंका और बॉडी-गार्ड बिल के ज़रिए फिल्म यह दिखाने की कोशिश करती है कि माइकल धीरे-धीरे अपने परिवार, ख़ासकर अपने पिता के कंट्रोल सिस्टम से बाहर निकलना चाहते थे। दरअसल यह फ़ैसला दशकों पुराने वर्चस्व, हिंसा और शोषण से बाहर आने की कोशिश थी।

हालाँकि इन्श्योरेन्स से मिले लाखों डॉलर माइकल बर्न-हॉस्पिटल को दान में दे देते हैं, फिर भी बच्चों से जुड़े आरोप, मीडिया ट्रायल और उन जटिल सवालों से वे अपने को बचा नहीं पाते। तथ्यों की गहराई में जाने से फिल्म पूरी तरह बच निकलती है, इसलिए कई जगह फ़िल्म एक खुली और ईमानदार कहानी कम, और माइकल की छवि को संभालकर पेश की गई स्मृति ज़्यादा लगती है।

अंतिम दृश्य के रूप में फ़िल्म के निर्माताओं ने 1988 में वेम्बली स्टेडियम में दी गयी माइकल की परफ़ॉर्मेंस को चुना; क्योंकि माइकल का नाम अब तक पूरी दुनिया की सांस्कृतिक स्मृति में स्थायी रूप से दर्ज हो चुका था किंतु दर्शक के रूप में मुझे लगा कि यह फ़िल्म उसी क्षण ख़त्म हो जाती है जब माइकल विक्ट्री-टूर के ख़त्म होने का एलान करते हैं - पूरी दुनिया के सामने वह अपने पिता के फ़ैसले को नकारते हैं। एंटोनी फुक्वा के निर्देशन में बनी यह फ़िल्म दृश्यात्मक और भावनात्मक स्तरों पर कई जगह प्रभावशाली लगती है लेकिन संभवतः माइकल जैक्सन एस्टेट की भागीदारी के कारण इसकी सीमाएं भी साफ़ दिखाई देती हैं। यही वजह है कि फ़िल्म ख़त्म होने के बाद भी माइकल जैक्सन हमारे भीतर एक निष्कर्ष नहीं, बल्कि एक सवाल की तरह बने रहते हैं।

फ़िल्म समीक्षा

दो दीवाने शहर में हल्की बयार-सी मोहक फ़िल्म

स्वरांगी साने

पत्रकार, समीक्षक, अनुवादक
swaraangisane@gmail.com

'घरौंदा' फ़िल्म का एक चर्चित गीत था 'दो दीवाने शहर में' किंतु चूँकि नायक 'श' को 'स' बोलता है इसलिए इस फ़िल्म में शहर की जगह 'सहर' है, इसी तरह नायक हुआ 'ससांक स्रीवास्तव' और नायिका 'रोसनी सर्मा' - उनकी शादी का बैकड्रॉप भी 'रोसनी' और 'ससांक' नाम से बन जाता है। फ़िल्म की नायिका रोशनी अपनी बड़ी बहन नयना (संदीपा धर) से कहती है कि वह धीरे-धीरे उनकी माँ (आयशा रजा) जैसी होती जा रही है मतलब जैसा पिता/पति को पसंद हो, वैसी बनती जा रही है। छोटी बहन जैसी है, वैसे ही रहना चाहती है, अपना जीवन चुनने की आज़ादी के साथ।

फ़िल्म की ख़ास बात यही है कि यह इंपरफ़ैक्ट को परफ़ैक्ट कह रही है। 'ब्यूटीफूल' के अंग्रेज़ी स्पेलिंग में से नायिका कुछ हिज्जों पर काला स्प्रे कर उसे कर देती है 'ब्यूटी यू' मतलब आप जैसे हैं, वैसे ही सुंदर हैं। नायिका के लैंस बिना पॉवर (नंबर) के होते हुए भी वह उन्हें लगाती है क्योंकि उसे अपनी नाक को लेकर हीन भावना है। उसे लगता है उसके पहले प्यार ने उसे इसीलिए छोड़ दिया था क्योंकि वह सुंदर नहीं दिखती। वैसे नायिका आत्मविश्वास से लबरेज़ है और यही ख़ूबी नायक को भाती है। नायक-नायिका अरेंज्ड मैरिज की वजह से मिलने वाले युगल हैं। नायिका की माँ शादी से पहले नायक के साथ चार दिन शहर के बाहर जाने की अनुमति देती है। माँ उस लड़के को 'हॉट' कहती है और नानी खाने की मेज पर पूरे परिवार के सामने देर से शादी होने और फिर माँ न बन पाने की दिक्कतों पर बात करती है। हम वाकई बहुत खुले समाज में रहने लगे हैं।

यह फ़िल्म नायक की तरह ही क्यूट-सी और नायिका की तरह आत्मविश्वास से भरी है। किसी शाम बारिश की हल्की फुहार पड़ जाए तो मौसम का जैसे हम आनंद लेते हैं, यह फ़िल्म वैसी ही है। फ़िल्म के उस दृश्य में जब दोनों को अकेले में बातचीत के लिए छत पर भेजा जाता है तब बारिश होने पर लड़का कहता है छत पर सूख रहे कपड़ों को भी नीचे ले चलते हैं। फ़िल्म में ऐसे कई छोटे-छोटे प्रतीक हैं, जो बड़े बदलावों के आने की बयार से लगते हैं।

नायक शौकिया फ़ोटोग्राफ़र है और एक दिन नायिका को बिना बताए उसकी सुंतस्वीरें खींच लेता है जो बड़े से होर्डिंग्स में सज जाती है। नायिका के लिए यह आत्मविश्वास बढ़ाने का काम करती हैं। दोनों के मन में हीन भावना उनके बचपन के जुड़े प्रसंगों से है। रवि उदियावर ने यह कहानी मानो सुकून के पलों में लिखी है। जिसमें मानवीय असुरक्षिताएँ (इनसिक्योरिटीज) भी फ़िल्म के माहौल को बड़ा सुरक्षित बनाती है। पिता-पुत्र के संबंधों में खिंचाव और पिता-पुत्री के रिश्तों की आत्मीयता को भी बहुत वास्तविक तरीके से रखा गया है।

सिद्धांत चतुर्वेदी और मृणाल ठाकुर मुख्य भूमिकाओं में बड़े अच्छे लगे। कौशल शाह की सिनेमैटोग्राफ़ी लुभावनी है; हेशाम अब्दुल वहाब के गीत-संगीत, जुबिन नौटियाल और नीति मोहन की गायिकी भी मधुर है। अभिरुचि चंद की पटकथा

चुस्त है - एक ब्यूटी-मैगज़ीन की बॉस है, जो फिल्टर्स और अवास्तविक आदर्शों से घिरी हुई है; एक माँ है, जिसके लिए बेटी की शादी मतलब गंगा नहाय है; एक बहन है, जो अपने पति की खुशी के लिए कीटो-डाइट करके बीमार पड़ जाती है; एक पिता है जिनके मापदंडों पर बेटा कभी उतर नहीं पाता - इतने सारे विरोधाभास होने पर भी फ़िल्म कहीं से लाउड नहीं होती।

स्थायी स्तम्भ: छंद-सलिला

गीतिका छंद

प्रो. मधु चतुर्वेदी

अध्यक्ष, सांस्कृतिक प्रकोष्ठ, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
madhuchaturvedi@hotmail.co.uk

वातायनम् के सुधि पाठकों को मेरा आत्मिक नेहवन्दन!

साथियों, पिछले अंक में हमने कुण्डलिया छन्द का रचना-विधान समझा। आइये अब एक और लोकप्रिय छन्द गीतिका के रचना विधान को समझते हैं। यह एक सम मात्रिक छन्द है अर्थात इसकी हर पंक्ति में समान मात्राएँ होती हैं। इसकी हर पंक्ति में छब्बीस मात्राएँ होती हैं। हर पंक्ति में चौदह बारह पर यति याने विराम होता है। यह छन्द प्रायः दीर्घ रचनाओं या कथा-प्रसंगों के वर्णन में प्रयुक्त होता है।

इस छन्द की रचना में पंक्तियों की कोई निश्चित मात्रा नहीं होती किन्तु क्रमशः दो पंक्तियों में तुकान्त आवश्यक है। हम यह कह सकते हैं कि इस छन्द में कम से कम दो पंक्तियों का होना आवश्यक है। अधिकतम की कोई सीमा नहीं है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि हर पंक्ति का प्रारम्भ दीर्घ मात्रा से हो और अन्त लघु दीर्घ से। मात्राओं का गणना विधान हम प्रथम अंक में ही समझ चुके हैं, अब उदाहरण से इस छन्द को समझते हैं:

शाप पा सब देव बलि से, हो गये वैभव रहित।
भोग के अभ्यस्त थे वे, हो गये अतिशय व्यथित।।
घट गयीं थीं संपदाएं, शक्तियाँ भी सब चुकीं।
पा असुरगण से पराभव, दृष्टियाँ उनकी झुकीं।।
इस पराभव से ग्रसित थे, त्रस्त गौरवहीन से।
हरि के निकटब्रह्मा सहित, वे गये हो दीन से।।

यह उद्धरण मैंने अपने महाकाव्य देवयानी के एक प्रसंग से दिया है। इसका एक बहुप्रचलित उदाहरण भी प्रस्तुत है, ताकि आप इस छन्द का रचना विधान समझ सकें:

हे प्रभो आनंददाता, ज्ञान हमको दीजिए।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को, दूर हम से कीजिये।।
लीजिये हमको शरण में, हम सदाचारी बनें।
ब्रह्मचारी धर्म रक्षक, वीरव्रतधारी बनें।।

आशा है, आप सभी गीतिका छन्द के रचनाविधान को भलीभांति समझ गये होंगे। अग्रिम अंक में मिलते हैं, एक और अन्य छन्द के रचना-विधान के साथ।
अनेकानेक मंगलकामनाओं के साथ!

भाषा के प्रक्षेपास्त्र

डॉ. अशोक बत्रा

सेवानिवृत्त प्राचार्य
ashokbatra.ashok@gmail.com

भाषा माध्यम है - सूचना का और संवेदना का। सूचना के लिए सरल, सीधी और इकहरी भाषा चाहिए। उससे वही अर्थ निकले जो लिखा या कहा गया हो! गणित और कानून की भाषा ऐसी ही होती है। पर संवेदनाएँ अतल, असीम, अनंत, अरूप और अमाप्य होती हैं। भाषा को उनकी गहराइयाँ, ऊँचाइयाँ और अरूप भावनाएँ व्यक्त करनी होती हैं। इसलिए मीरा दर्द में इतना ही कह पाती हैं, 'मेरो दर्द न जाने कोय।'

भाषा हार नहीं मानती; वह अकथ्य को कहने के लिए कुछ-न-कुछ तरीके खोज लेती है। संवेदना की अतल गहराइयों तक पहुँचने के लिए उसे दिव्य प्रक्षेपास्त्र बनाने पड़ते हैं। कभी शब्द को प्रक्षेपास्त्र बनाना पड़ता है, कभी पदबंध को तो कभी पूरे वाक्य को। शब्द को प्रक्षेपास्त्र बनाएँ तो उपमान या प्रतीक बनता है। पदबंध को सुदूर अर्थ तक प्रक्षेपित किया जाए तो उसे बहुव्रीहि समास या मुहावरा कहते हैं। और वाक्य को दूरभेदी बनाएँ तो उसे सूक्ति, अन्योक्ति, लोकोक्ति या समासोक्ति कहते हैं।

किसी मोटे को 'मोटा' कहने में वह बात नहीं है, जो उसे 'हाथी' कहने में है; मूर्ख को गधा कहने में है, शिशु को फूल कहने में है या सुंदरी को हरसिंगार कहने में है। इन्हें प्रतीक कहें या उपमान, ये दिव्यास्त्र हैं जो किसी के गुण को अनंत फैलाव दे देते हैं। ये शब्द या पद जब एकत्र होकर पदबंध या मुहावरा बनते हैं और एक वाक्य के अंग बनते हैं तो इनकी धार देखने योग्य होती है। किसी 'ढुलमुल' को 'थाली का बैंगन' या 'बेपैंदी का लोटा' कहने में जो बात है, अकारण बात बढ़ाने को तिल का ताड़ बनाना कहने में जो बात है, वह सरल अभिव्यक्ति में कहाँ! ये भी भाषा के दिव्यास्त्र हैं।

भाषा के दिव्यास्त्र अनंत हैं; क्योंकि भाषा ऐसी दिव्य सुंदरी है जो संसार के सभी परिधानों को धता बताकर अपने लिए नित नए परिधान खोज लेती है। वाक्य-रचना में जब वह तीखी मिर्च-सी तेज और प्रभावी हो जाती है तो सूक्ति कहलाती है। है तो वह उक्ति ही, परंतु उसकी चुस्ती, कलात्मकता और संक्षिप्तता के कारण हम उसे सूक्ति कहते हैं। थोड़े में बहुत कहना या गागर में सागर भरना - यह सूक्ति की करामात है। और जब कोई उक्ति अपने संकेतों के द्वारा खुद अपने आप को नहीं व्यक्त करती बल्कि अपने बहाने से औरों पर वार करती है - 'कहना बेटी को सुनाना बहू को' के अंदाज में जब बातें करती है तो उसे अन्योक्ति कहते हैं। बिहारी की एक अन्योक्ति प्रसिद्ध है। कच्ची उम्र की नई पत्नी के संग विलास में डूबे राजा जयसिंह को जब कोई नहीं चेता सका तो बिहारी की इस एक अन्योक्ति ने चेताया –

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सो बंध्यो, आगे कौन हवाल।।

कहते हैं, राजा जयसिंह इस दिव्यास्त्र की चोट से काम पर लौट आए। यह अन्योक्ति है।

इसी की एक दुधारी बहन है – समासोक्ति, जो दोनों तरफ धार रखती है। अपने लिए भी जीती है

और औरों पर भी दूर तक मार करती है। जब पद्मावती की सखियाँ पद्मावती को कहती हैं –

ए रानी! मन देखु बिचारी।
एहि नैहर रहना दिन चारी।।

तो वे केवल अपने मायके में रहने की बात नहीं कर रहीं, अपितु इस नश्वर संसार में रहने की भी बात कर रही हैं।

अन्योक्ति और समासोक्ति कितना भी संकेत उठा लें, किंतु वे दोनों किसी एक लक्ष्य से बँधी होती हैं, परंतु ‘लोकोक्ति’ स्वतंत्र है, मुक्त विचरण करती है और लोगों की जुबान पर भी विहार करती है। जब कोई सांकेतिक उक्ति स्वयं अपना अर्थ न देकर किसी और तरफ इशारा करती है तो उसे लोकोक्ति कहते हैं। यह स्वयं में पूरा वाक्य होती है। यह वाक्य पर निर्भर नहीं होती बल्कि किसी कथन को पुष्ट करती है या उसका समर्थन करती है। जैसे - कोई अपटु, अकुशल व्यक्ति कुशलता पर बढ़-चढ़कर बातें करने लगे तो बस इतना ही कहना काफ़ी है - थोथा चना बाजे घना। इसे ‘कहावत’ भी कहते हैं।

बच्चे और बुखार

डॉ. रमणीक माथुर

बाल रोग विशेषज्ञ, चेल्सी व वेस्टमिंस्टर एनएचएस ट्रस्ट
madhuchaturvedi@hotmail.co.uk

अपने बच्चे को बुखार में देखना चिंताजनक हो सकता है, लेकिन यह एक सामान्य संकेत है कि उनका शरीर किसी संक्रमण से लड़ रहा है। यहाँ एक सरल मार्गदर्शिका दी गई है जो आपको उनके बुखार को नियंत्रित करने और उन्हें घर पर आराम देने में मदद करेगी। अधिक सलाह के लिए, आप किसी बाल रोग विशेषज्ञ से परामर्श कर सकते हैं।

दवा का सुरक्षित और प्रभावी उपयोग:
पैरासिटामोल और आइबुप्रोफ़ेन बुखार और बेचैनी को कम करने में प्रभावी हैं। अपने बच्चे को बेहतर महसूस कराने के लिए, इन्हें लेबल पर दिए गए निर्देशों के अनुसार दें। अपने बच्चे की उम्र और वजन के अनुसार नियमित रूप से सही खुराक देने से बुखार के दोबारा बढ़ने का इंतजार करने की तुलना में अधिक प्रभावी हो सकता है।

महत्वपूर्ण: हमेशा सही खुराक की जांच करें और यदि पिछले 6 घंटों में पैरासिटामोल और आइबुप्रोफेन दोनों नहीं दी गई, तो आप दोनों एक साथ दे सकते हैं।

अपने बच्चे को ज़्यादा गरमाई में न रखें:
उनके कमरे में अच्छी हवा आने-जाने दें। इसके लिए खिड़की खोलें या पंखे का इस्तेमाल करें। बच्चे को हल्के कपड़े पहनाएं ताकि वे ठंडे और आरामदायक महसूस करें। बुखार से डिहाइड्रेशन हो सकता है, इसलिए बच्चे को पानी पिलाना बहुत ज़रूरी है। उन्हें थोड़ी-थोड़ी देर में पानी, दूध या कोई और तरल पदार्थ पिलाएं। खाने-पीने की चिंता न करें; जब बच्चा बीमार हो तो तरल पदार्थ सबसे ज़रूरी हैं।

हालांकि ज़्यादातर बुखार गंभीर नहीं होते, लेकिन यदि आपके बच्चे में निम्नलिखित लक्षण दिखें तो तुरंत डॉक्टर या किसी बाल रोग विशेषज्ञ से परामर्श करें:

बच्चा यदि तीन महीने से कम उम्र का है; सांस लेने में तकलीफ़ हो रही है; वह असामान्य रूप से सुस्त है या उसे जगाना मुश्किल है; उसकी गर्दन अकड़ी हुई है या त्वचा पर ऐसे दाने हैं जो दबाने पर भी नहीं मिटते; बुखार 3-5 दिनों से अधिक समय तक बना रहता है।

नटखट नगरी

आंधी डाकिया है

मुकेश नेमा

एडीशनल कमिश्नर एक्साइज़ मध्यप्रदेश, लेखक

कल धूल भरी आंधी चली इंदौर में। इरा का न धूल से ज़्यादा परिचय है न आंधी से। हू हू करते आए बवंडर को देख इरा चकित हुई। इरा के रूम की बालकनी में रखा कपड़े सुखाने का स्टैन्ड औंधे मुँह गिरा और कुछ गमले भी टूट गए। इरा ने मम्मी की तरफ़ देखा। मम्मी ने इरा को बताया कि ये आंधी डाकिया है। मानसून के जल्द आने की अच्छी खबर लाई है।

इरा ने पूछा मानसून क्या होता है। मम्मी ने बताया इरा को कि केरल से ढेर सारे काले बादल उड़कर आएँगे। बादल होते है ठंडे और साफ़ पानी की टंकियाँ। इरा ने फिर पूछा बादल क्यों आएँगे। मम्मी ने कहा इसलिए क्योंकि भगवान जी इरा से प्यार करते है। उन्हें पता है कि इंदौर में पानी बचा नहीं है। इरा परेशान हो रही है। इसलिए भगवान ने बादलों से कहा है कि फटाफट जाओ, इरा के शहर में पानी गिराओ। पूरे इंदौर को भिगो दो ताकि इरा पानी में छप छप कर सके।

इरा ने कहा ये अच्छी बात है पर भगवान जी को आंधी भेजने की क्या ज़रूरत थी? वो सीधे बादल ही भेज देते। मम्मी ने कहा, किसी के घर बिना बताए नहीं जाते। पहले खबर करना ज़रूरी होता है। इरा ने कहा ये बात भी ठीक है पर आंधी ने गमले क्यों गिराए? मम्मी ने कहा आंधी तुम्हारे जैसी शैतान बच्ची है। तुम जब पिछली बार दादू के यहाँ गई थी तो तुमने भी उनके यहाँ ड्राइंगरूम मे रखा गमला गिरा दिया था।

इरा ने हँसकर कहा सही बात। इस आँधी तूफ़ान के बाद अब इरा और इंदौर को पानी से भरे बादलों का इंतज़ार है। बादल जल्दी आएँगे भी। इसलिए आएँगे क्योंकि इरा इंदौर में रहती है।

अंतरराष्ट्रीय साहित्य

सहायिका

अल्फ्रेड ड्योब्लिन

जर्मन लेखक

पिछली सदी के मध्य में न्यू यॉर्क शहर के एक कारखाने ‘ग्रासो’ के मालिक पर चले मुक़दमे ने ज़बरदस्त हलचल मचाई थी। महीनों तक लोग उस रहस्यमयी घटना और उससे जुड़े भयावह प्रसंगों पर चर्चा करते रहे। लोग अभी इस घटना से उबर ही नहीं पाए थे कि दक्षिणी राज्यों के साथ युद्ध छिड़ गया। डेढ़ साल बाद जब हालात शांत हुए तब तक इस घटना की यादें लोगों के दिमाग़ से लगभग मिट चुकी थीं। अब इसके क़िस्से टुकड़ों में बिखरे हुए मिलते हैं। समय के साथ इस घटना पर तरह-तरह की मनगढ़ंत परतें चढ़ती गईं। यह सोचकर हैरानी होती है कि मनुष्य के जीवन में चाहे कितनी ही असंगत और असाधारण घटनाएँ क्यों न घट जाएँ, वह मुस्कुराते हुए ऐसे आगे बढ़ जाता है जैसे जीवन पहले की तरह ही चल रहा हो।

पचास के दशक के अंत में शहर के बाहरी इलाक़े में एक अंत्येष्टि-सेवा

केंद्र बड़ी तेजी से फल-फूल रहा था; वह इलाक़ा आज पूरी तरह शहर का हिस्सा बन चुका है। उसका मालिक ग्रासो पाँच साल पहले अपनी पत्नी के साथ इटली से यहाँ आकर बस गया था। पहले उसने होटल के व्यवसाय में हाथ आज़माया लेकिन सफलता नहीं मिली। फिर उसने बढ़ई का काम किया और इस काम से उसने इतना कमाया कि ताबूत का एक पुराना गोदाम ख़रीद लिया। उस समय शहर की आबादी मुश्किल से दो लाख रही होगी। बहुत कम समय में ग्रासो का काम इतना फैल गया कि शहर में अंत्येष्टि सेवाओं का ज़्यादातर काम उसी के हाथ में आ गया। अस्पतालों और फ़ौजी इलाज केंद्रों से जुड़े हुए कुछ सरकारी काम ही कभी-कभार दूसरी कंपनियों को मिल पाते थे। इस कारोबार से जुड़े बाक़ी लोग एक-एक कर अपना काम बंद करते गए। यहाँ तक कि पूरी ताक़त से टिके रहने की कोशिश करने वाले बहुत संपन्न प्रतिद्वंदियों ने भी अंततः ग्रासो के आगे घुटने टेक दिए और ग्रासो को जैसे सब कुछ बड़ी सहजता से मिलता चला गया।

मुक़दमे की जाँच के दौरान यह बात सामने आई कि व्यवसाय की अचानक हुई वृद्धि में स्वयं ग्रासो का कोई विशेष योगदान नहीं था। दरअसल उसके कारोबार का सुनहरा दौर ठीक तब शुरू हुआ जब माइक बॉन्डी नामक एक युवा कर्मचारी वहाँ काम करने लगा। वह कहाँ से आया था, यह किसी को मालूम नहीं था। लोग बस इतना जानते थे कि वह अपने मालिक से इतालवी में बात करता था। कहा जाता है कि जब उसे काम पर रखा गया था तब वह लगभग बीस वर्ष का रहा होगा। लेकिन जिन-जिन लोगों ने उसे देखा था, वे इस बात से इनकार नहीं कर सकते थे कि पंद्रह वर्ष काम करने के बाद भी उसकी उम्र बीस ही लगती थी। मुक़दमे के दौरान उसके पास से कुछ तस्वीरें बरामद हुईं जिनमें वह ग्रासो के साथ बाँहों में बाँहें डाले हुए पाया गया। उन तस्वीरों से इस बात की पुष्टि हुई कि उस पर समय का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। उसके बाल-सुलभ कोमल चेहरे पर उम्र की कोई रेखा नहीं थी और उसकी गहरी काली ज़ुल्फ़ें अब भी उसके गोरे माथे पर उसी तरह गिरती थीं जैसे पंद्रह साल पहले। भले ही यह बात अजीब लगे पर उसके कपड़ों पर भी समय का कोई असर नहीं दिखता था। और तो और किसी ने उसे कभी नए कपड़े खरीदते हुए देखा भी नहीं था। वह हमेशा एक काला सूट पहनता था और कोट के ऊपर ढीली-सी चमचमाते बटनों वाली कमीज़-नुमा जैकेट – कपड़ों की यह स्टाइल शायद दशकों पुरानी थी।

मुक़दमे की पूछताछ के दौरान कोई भी यह ठीक-ठीक नहीं बता पाया कि रात में वह कहाँ रहता था। कहा जाता था कि वह कभी-कभी कारखाने में ही सो जाता, लेकिन अधिकतर दिन शाम ढलते ही अपनी छोटी-सी गाड़ी में बैठकर ग्रामीण सड़क से होते हुए सेंट फ़्लोरिडा की ओर निकल जाता और कई घंटों तक बिल्कुल ग़ायब रहता। मगर इन बातों में कितनी सच्चाई थी कोई नहीं जानता था। ये उन्हीं मनगढ़ंत किस्सों का हिस्सा थीं जिनका ज़िक्र मैंने शुरू में किया है।

माइक क़द में छोटा था, वह हमेशा मुलायम फ़ेल्ट की टोपी पहनता और हाथ में एक पतली-सी छड़ी रखता। वह चुपचाप, दबे पाँव ऐसे चलता कि उसके आने की आहट तक नहीं होती थी। उसकी आँखों के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि उन्हें कभी किसी ने नहीं देखा था। वह हमेशा नज़रें झुकाए रखता था और जब कोई उससे बात करता तो उसकी आँखों की पुतलियाँ उसकी कोमल पलकों के पीछे ही घूमती प्रतीत होती थीं। उसके बहुत पतले होंठ अक्सर सुंदर, विनम्र मुस्कान में ढल जाते थे। उसकी आवाज़ की नम, लयात्मक मिठास शब्दों में बयान कर पाना मुश्किल था। शायद यही माइक के असाधारण प्रभाव का रहस्य था। वह हमेशा सीधी और सटीक बात करता था, ज़्यादा नहीं बोलता था और अपने काम की बातों के अलावा केवल जड़ों, पेड़ों, खेतों और जानवरों के बारे में बात करता था। उसकी इन बातों में शहर के लोग आम तौर पर बहुत कम दिलचस्पी दिखाते थे।

क़िस्मत हमेशा उसका साथ देती थी। धीरे-धीरे यह बात सामने आई कि माइक बॉन्डी रोज़ न्यू यॉर्क की सड़कों पर घूमता था और उसके पीछे लंबा, रूसी नस्ल का सफ़ेद शिकारी कुत्ता चलता था। यह विशाल सफ़ेद

प्राणी उसकी तरह ही दबे पाँव चलता था और भावशून्य आँखों से इधर-उधर देखता था। माइक बॉन्डी बीमारों के घर जाता और उनसे बातें करता। उसे कोई रोकता नहीं था बल्कि बीमार लोग पादरी या डॉक्टर से पहले उसे बुलवाते थे। वे बीमारी के कठिन पलों में माइक द्वारा कहे गए चंद शब्दों के लिए उसके आभारी रहते। जिन लोगों से वह मिल लेता था, वे शांत और पीड़ा-मुक्त हो जाते। मुक़दमे की जाँच में यह भी पता चला कि एक सप्ताह के भीतर वे बड़े शांत ढंग से मर जाते और उनकी कोई मदद नहीं कर पाता था। जो उसे एक बार देख लेता, उस पर ऐसा भरोसा करने लगता जिसे समझना मुश्किल था। और जब कोई गंभीर रूप से बीमार पड़ता तो माइक के लिए ऐसे तड़पता जैसे उसे उसकी लत लगी हुई हो। वह न तो लोगों के नज़दीक जाता था, न उन्हें कुछ देता था, और न ही उन्हें छूता था। यह सब भी मुक़दमे की जाँच-पड़ताल के दौरान सामने आया।

माइक बॉन्डी की अपने मालिक की पत्नी से कोई विशेष नज़दीकी नहीं थी। ग्रासो की पत्नी जोशीले मर्द पसंद करती थी, लेकिन चूँकि बेवफ़ा स्त्रियाँ अक्सर ईर्ष्यालु भी होती हैं, वह इस बात से प्रसन्न रहती थी कि उसका पति — जिसे लड़कियों में कोई दिलचस्पी नहीं थी — बॉन्डी के साथ ही समय बिताता था। जब वह किसी रंगीन मुलाक़ात के बाद गहरी साँसें भरती हुई देर रात घर लौटती तो अपने पति से लिपट जाती जो उस समय उस शांत, विचित्र व्यक्ति के साथ अँधेरी सड़कों पर बाँहों में बाँहें डाले टहलता मिलता।

वसंत के अंतिम दिनों में ग्रासो के गोदाम के बग़ल में रहने वाले एक कानूनी सलाहकार मार्टिन की जवान पत्नी की अचानक मृत्यु हो गई। उसके दो छोटे बच्चे थे। शोकाकुल पति उस मृत स्त्री से अलग नहीं हो पा रहा था और उसके निधन के बाद की भयभीत रात में उसके मन में यह विचार आया कि वह शव को मृत्यु-शैया से हटाकर जितना हो सके उतने सुंदर तरीक़े से सजा एक भव्य ताबूत में रखे। इस विचार से उसमें अचानक जैसे जान आ गई। लगभग ग्यारह बजे वह बिस्तर से उठा, कपड़े पहने और अपने पुराने मित्र ग्रासो के पास नीचे गया।

गोदाम के दरवाज़े बंद थे। शटर की दरारों से झाँकती हुई धुँधली लाल रोशनी पतली लकीरों की तरह ज़मीन पर फैली हुई थी। मार्टिन बड़ा गेट खोलकर अँधेरे आँगन में लड़खड़ाते हुए आगे बढ़ा और बग़ल के दरवाज़े से एक लंबे गलियारे में पहुँचा। यह गलियारा सीधे ताबूत के गोदाम तक जाता था। गोदाम का परदा हल्के से सरसराया। बहुत कठिनाई से उसकी आँखें वहाँ के अँधेरे की अभ्यस्त हुईं। गुंबददार छत के नीचे गलियारों की दीवारों से लगे ताबूत रखे थे। सभी ताबूत खुले हुए थे। वे वहाँ बस यूँ ही पड़े थे — न किसी प्रतीक्षा में, न किसी लालसा में — बल्कि किसी रहस्यमय रिक्तता में डूबे अपने भीतर सिमटे हुए और केवल कुछ ही ताबूत ऐसे थे जो मानो आहें भरते हों, तड़पते हों।

लालटेन की धुँधली लाल टिमटिमाहट में मार्टिन ने पीछे के कोने में कुछ हलचल देखी और हल्की-सी फुसफुसाहट सुनी। वहाँ एक ताबूत के सामने ग्रासो घुटनों के बल बैठा था और उसी ताबूत से दो सफ़ेद बाँहें उठी हुई थीं जिनकी फीतेदार आस्तीनें पीछे सरक गई थीं। ग्रासो ने अपना सिर और नीचे झुकाया और अपना चेहरा एक औरत के सीने से लगा लिया। वह बहुत धीरे से बुदबुदाया— “बेसी” — और भी बहुत कुछ कहा जो इतना धीमा था कि मार्टिन की समझ में नहीं आया। ताबूत से उत्तर आया — “एर्नस्टो” — उस आवाज़ में हँसी और रोना एक साथ घुले हुए थे, और वह आवाज़ बेहद मीठी थी।

मार्टिन का दिल ज़ोर से धड़कने लगा, कलेजा मुँह को आ गया। वह घबराकर पीछे हटता हुआ बाहर निकल गया और जिस काम के लिए आया था वह ही भूल गया। उसे यह भी होश नहीं कि वह अपने बिस्तर तक कैसे पहुँचा। सुबह होते ही उसने जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और दौड़ता हुआ ग्रासो की पत्नी के पास पहुँचा, जो घर के ढीले-ढाले कपड़ों में अपनी रसोई में काम कर रही थी। मार्टिन के बेवक़्त आने पर उसे हैरानी हुई और उसने झट से अपने ऊपर एक कपड़ा डाल लिया।

पहले तो उसे यकीन ही नहीं हुआ। कुछ पल वह अपने पड़ोसी को अवाक देखती-सुनती रही और मन ही मन सोचती रही कि शायद जवान पत्नी की मौत के बाद वह अभी तक ख़ुद को संभाल नहीं पाया है, फिर वह अचानक कॉफ़ी पीसने की

ओखली माँजते-माँजते रुकी और अगले ही क्षण उसने वह ओखली ज़ोर से ज़मीन पर दे मारी। उसने अपनी बायीं बाँह को दाँत से काटा फिर दराज़ में टटोलकर एक नुकीला चाकू निकाल उसे लगातार लकड़ी की दीवार में घोंपने लगी। फिर चीखते हुए मार्टिन से पूछने लगी कि वह घटिया औरत आख़िर दिखती कैसी थी - क्या कोई इतना बेपरवाह हो सकता है कि उसकी शक्ल-सूरत का कोई अनुमान भी न दे सके? और अब बेकाबू होकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

फिर कुछ देर में खुद को संभालकर वह दृढ़ता के साथ में बोली कि आज रात वह स्वयं इस मामले की तह तक जाएगी। उसका दृढ़ निश्चय देख मार्टिन भी हैरान था। ग्रासो की पत्नी ने झटके से दरवाज़ा खोला, अपने पति को अंदर बुलाया और खिड़की से बाहर देखते हुए अपने काले-घने बाल गूँथते हुए कहा कि मार्टिन ने बताया है कि उसकी माँ बीमार है इसलिए उसे तुरंत दो-तीन दिनों के लिए स्टार्टन जाना पड़ेगा। फिर तीनों चुपचाप कॉफ़ी-टेबल पर बैठ गए। ग्रासो की पत्नी बुरी तरह काँप रही थी और उसके हाथ से कप फ़र्श पर गिरकर टूट गया। ग्रासो ने अपनी पत्नी से कहा कि यह तुम्हारी माँ के लिए शुभ संकेत है।

रात के लगभग दस बज रहे थे। दिन भर मार्टिन के बच्चों की देखभाल करने के बाद ग्रासो की पत्नी घर लौटी। अँधेरी सड़क पार कर वह चुपके से आँगन में पहुँची, खिड़की खुली हुई थी और उसने देखा कि ग्रासो कमरे में अकेला बैठा था। कमरे की सारी बत्तियाँ जली थीं। उसका चेहरा उतरा हुआ था जैसे भीतर से टूट चुका हो। वह अपने विचारों में डूबा सामने देखे जा रहा था। वह सुस्त-सा आदमी अपने आप से कुछ बुदबुदा रहा था, उसका झुर्रियों से भरा चेहरा ढीला पड़ गया था। खिड़की की ओर देखते ही उसकी लाल आँखें आँसुओं से भर उठीं।

ग्रासो की पत्नी दरवाज़े के पास रखे एक संकरे ताबूत में छिप गई। उसके दाँत कटकटा रहे थे, हाथ इतने काँप रहे थे कि चाकू पकड़ना भी मुश्किल हो रहा था। ग्यारह बजने से कुछ पहले गलियारे से किसी के दबे-पाँव चलने की धीमी आहट सुनाई दी। परदा हल्के से सरसराया। एक छोटी-सी रोशनी टिमटिमाई और उसने एक नज़र में ही माइक बॉन्डी को पहचान लिया। वह उसे पहले भी न जाने कितनी बार देख चुकी थी — उसकी वही हल्की झुकी हुई मुद्रा, गोरे माथे पर सलीके से चिपकाए रेशमी बाल और नीचे झुकी पलकें — सब कुछ परिचित था। पर आज उसकी यह नीरव चाल उसे भीतर तक हिला गई। उसे लगा जैसे वह बेहोश हो जाएगी। यह किसी इंसान की चाल नहीं लगती थी। उसने झट से अपनी बाँह से मुँह दबा लिया ताकि चीख बाहर न निकल जाए।

माइक ने वहाँ से गुज़रते हुए उँगली से बत्ती बुझा दी। ग्रासो की पत्नी ने आँखें कसकर बंद कर लीं और जब खोलीं तब तक माइक बॉन्डी वहाँ से ग़ायब हो चुका था। लेकिन जिस दिशा में वह गया था, वहाँ अँधेरे में एक सफ़ेद आभा-सी थी। एक झुका हुआ कंकाल दबे पाँव धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था — मानो साक्षात मृत्यु घिसटती हुई चली जा रही हो। जिस ताबूत में वह कंकाल लपककर घुसा उसके ऊपर उसे अब भी वही आभा दिखाई दे रही थी। तभी ग्रासो के भारी कदमों की आवाज़ पूरे गुंबददार तहखाने में गूँज उठी। वह अपनी पत्नी के पास से गुज़रा जो बेहोश होने की हालत में थी। ग्रासो ने लालटेन जलाई।

ग्रासो की पत्नी उठी, दाँतों के बीच चाकू दबाया और उस विशालकाय आदमी के पीछे-पीछे चलने लगी। हर क़दम पर वह खंभों और दीवारों का सहारा लेती हुई आगे बढ़ी। सफ़ेद आभा वाले उस ताबूत के सामने यह चौड़े क़द वाला आदमी घुटनों के बल गिर पड़ा। ग्रासो की पत्नी ने चौंककर पीछे हटते हुए देखा, दो सफ़ेद हाथ ऊपर की ओर उठे हुए थे, जैकेट खुली थी और उसके नीचे युवती-के-से स्तन पर एक झुर्रियों से भरा गीला चेहरा चिपका हुआ था। फिर माइक बॉन्डी का शांत, लगभग स्त्री जैसा चेहरा ऊपर उठा। उसने उस टूटे हुए आदमी को कोमल शब्द कहते हुए अपने पास खींचा। वे एक-दूसरे से लिपट गए।

ग्रासो की पत्नी में अब बस इतनी शक्ति बची थी कि किसी तरह

घिसटते हुए रसोई तक पहुँच सके। वहाँ वह दो घंटे बेहोश पड़ी रही। बाक़ी की रात उसने पुलिस चौकी में बिताई। उसने चौकी में हर बात बताई पर किसी ने उस पर विश्वास नहीं किया, उल्टा उसे बीमार समझा। अगली सुबह कानूनी सलाहकार मार्टिन को बुलाया गया तब जाकर दो सिपाही ग्रासो के घर भेजे गए और उन्होंने ग्रासो तथा बॉन्डी को गिरफ्तार किया। उन्होंने किसी प्रकार का विरोध नहीं किया।

आगे की कार्यवाही में ग्रासो पूरी तरह मौन रहा। बॉन्डी की चिकित्सकीय जाँच से पता चला कि वह बीस वर्ष की लड़की है। यह पता लगाना असंभव था कि वह वास्तव में कौन थी! तीन सप्ताह बाद ग्रासो के तहखाने की स्थानीय जाँच होने पर बॉन्डी ने पहली बार मुँह खोला। उसने शुरुआत में ही कहा कि कोई भी उसकी बात पर विश्वास नहीं करेगा। फिर उसने बताया कि उसका नाम बेसी बेनेट है और अस्सी साल पहले वह न्यू यॉर्क के पास सन-फ़ेयर में रहती थी। बीस वर्ष की उम्र में उसे तपेदिक हो गया था और अस्पताल में भर्ती किया गया था। वह मरने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थी। उसने मृत्यु से पूरी ताक़त से संघर्ष किया जो बहुत कम लोग कर पाते हैं। वह यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी कि जीने की प्रबल लालसा होने के बावजूद मात्र एक फेफड़ा खराब होने की वजह से उसे मरना होगा।

तभी एक अज्ञात शक्ति — जिसका नाम वह नहीं ले सकती थी — अवतरित हुई और उसने बेसी को मृत्यु की सेविका बना दिया। उसे दुनिया में लौट आने की अनुमति तो मिली पर जीवन के उत्सव में शामिल होने की नहीं। बेसी को उस अज्ञात शक्ति की ओर से काम मिला था कि जो लोग इस दुनिया से जाना चाहते थे, वह उन्हें मृत्यु दे। वह उनके भीतर मृत्यु से जुड़े बेतुके डर दूर करती, उन्हें शांत करती और शीघ्र उनका अंत कर देती। उसे लोगों के बीच एक सहायिका के रूप में भेजा गया था ताकि वह करुणामयी मृत्यु दे सके। उसे ग्रासो से लगाव हो गया था और अच्छा यही था कि वे अब अलग हो जाएँ — नहीं तो उसे जल्द ही उसके कारण हमेशा के लिए मरना पड़ता।

जाँच में यह पुष्टि भी हुई कि लगभग सौ साल पहले सन-फ़ेयर में बेसी बेनेट नाम की एक लड़की रहती थी और बीस वर्ष की उम्र में वहीं के अस्पताल में उसकी मृत्यु हुई थी लेकिन पोस्टमार्टम के लिए ले जाते समय उसकी लाश रहस्यमय ढंग से गायब हो गई थी। बार-बार अपनी बेगुनाही की सफ़ाई देने के बावजूद ड्यूटी पर तैनात दो नर्सों पर काम में लापरवाही का इल्ज़ाम लगा कर उन्हें नौकरी से निकाल दिया गया था और बाद की सारी जाँच-पड़ताल का भी कुछ नतीजा नहीं निकला था।

दूसरी सुनवाई में न्यायाधीशों ने इन तथ्यों के आधार पर बेसी बेनेट उर्फ़ माइक बॉन्डी पर ज़हर देकर हत्याएँ करने का आरोप लगाया। उन्होंने उससे तुरंत वह पाउडर दिखाने कहा जिसका वह इस्तेमाल करता था। ऐसा न करने पर उसे यातना के तख़्ते पर लिटाये जाने कि सज़ा थी। उसे आदेश दिया गया कि नीचे देखना छोड़कर न्यायाधीशों की आँखों में सीधे देखे। बेसी अपने उन्हीं काले कपड़ों में हल्का-सा मुस्कुराई लेकिन उसका झुका हुआ माथा लाल पड़ गया। उसने निवेदन किया कि हथकड़ियाँ खोल दी जाएँ और उसे जाने दिया जाए। उसके इस व्यंग्यपूर्ण व्यवहार से क्रोधित होकर न्यायाधीशों ने उसे कोड़े मारने के लिए जल्लादों को बुलाने का आदेश दिया।

थोड़ी ही देर में सुनवाई में मौजूद लोगों में भी उस ज़हर देने वाली औरत के ख़िलाफ़ भयंकर गुस्सा फैल गया। लोग अपनी जगहों से उठकर उसकी ओर बढ़ने लगे। न्यायाधीश भीड़ पर से नियंत्रण खो बैठे। इसी बीच बेसी फिर से न्यायाधीशों के सामने आई और अपने बँधे हाथ दिखाते हुए धीरे से बोली कि उसके पास समय नहीं है, कृपया उसकी हथकड़ियाँ खोल दें और उसे जाने दें।

तभी पीछे से एक बदमाश लड़के ने उसके कंधे पर वार किया और भीड़ बेसी पर ऐसे टूट पड़ी जैसे वह कोई शिकार हो। उसी क्षण वहाँ मौजूद सभी लोगों को अचानक सीने में घुटन महसूस होने लगी। एक आदमी ने हाँफते हुए खिड़की का शीशा तोड़ दिया लेकिन ताज़ी हवा भी उसे राहत नहीं दे सकी। एक न्यायाधीश के होंठ नीले हो गए और वह लड़खड़ाता हुआ किसी तरह एक दरवाज़े से बाहर निकलकर सड़क तक पहुँचा और वहीं गिर पड़ा। बाक़ी न्यायाधीश अपनी-अपनी कुर्सियों पर ऐसे बैठे रहे जैसे नींद में डूबे हों। कुछ क्षणों के लिए तहखाने में फिर से गहरा सन्नाटा

छा गया — सिर्फ गिरती लाशों की गूँज सुनाई देती रही।

लोग बेंचों को लाँघते हुए आगे बढ़ने लगे। काले बालों वाली स्त्री ने अपनी आँखें फैलाकर चारों ओर देखा और गुस्से में दाँत भींचकर कर्कश सीटी बजाई। तभी एक आदमी लड़खड़ाता हुआ बाहर से कमरे में आया और उसने स्त्री का हाथ पकड़ लिया। स्त्री ने अपने बालों को छुआ और उस आदमी के पैरों की ओर फूँक मारी, उसी पल उस आदमी के शरीर पर आग भड़क उठी। वह फटी आवाज़ में चीखते हुए लड़खड़ाता पीछे हुआ और ज़मीन पर गिर पड़ा।

तभी काले बालों वाली वह स्त्री अपने भीतर सिमट गई और अगले क्षण अपनी कनपटियों को छूती हुई झटके से सीधी खड़ी हुई और विशाल गुंबददार तहखाने के बीचों-बीच एक सीधी काली लौ की तरह भभक उठी। वह धुएँ से लिपटे अग्नि-स्तंभ की तरह लपकती हुई ऊपर उठी और छत को चीरती हुई वहाँ से निकल गई।

उस घने धुएँ ने आसपास की सभी सड़कों पर लोगों का दम घोंट दिया। यह भयानक आग पूरे दो घंटे तक धधकती रही। औरतों और बच्चों को मिलाकर लगभग छह सौ लोग झुलसकर मर गए।

उसके बाद पूरा इलाक़ा मलबे में बदल गया। कई दिनों तक कोई भी उस ज़हरीले धुएँ के पास जाने की हिम्मत नहीं कर सका। न्यायाधीश और आरोपी एक साथ ग़ायब हो गए थे। उस दिन के बाद से लोगों ने न तो कभी उस करुणामयी मृत्यु को सड़कों पर चलते देखा, न ही उसके पीछे दबे-पाँव चलने वाले उस सफ़ेद रूसी शिकारी कुत्ते को जो उसकी तरह ही भावहीन आँखों से इधर-उधर देखा करता था। बल्कि कहा तो यह जाता है कि बीमार लोग अपने प्रलाप में बताते थे कि बिना ज़ंजीर वाला एक सफ़ेद जानवर उनके सीने पर चढ़कर बैठ जाता था, खाली आँखों से घूरता और नुकीले दाँतों से उनका गला दबोच लेता था।

और इस प्रकार प्रेममयी मृत्यु देने वाली सहायिका को भगा दिए जाने की यह कथा लंबे समय तक देश भर में प्रचलित रही।

अनुवाद- मार्गदर्शन- प्रो. प्रियादा पाध्ये

अनुवादक- रिया नाथ, पूनम रौतेला, गार्गी पात्रा, सूरज गुप्ता, अदिति मेहता, विजय सिंह और सौरभ कुमार

अंतरराष्ट्रीय साहित्य

एक छोटी स्त्री

प्रियंका ओम

अंग्रेज़ी से अनुवाद

pee.om@gmail.com

वह क़द में औसत से कुछ कम और बहुत पतली है। लगभग हमेशा तंग कपड़े पहनती है। जब भी मैं उसे देखता हूँ, वह लगभग एक जैसे ही वस्त्रों में दिखाई देती है- भूरे और पीले रंग के मेल से बने हुए, मानो लकड़ी के रंग हों, और उन्हीं रंगों से मेल खाते बटन और झालरों से सजे। वह कभी सिर नहीं ढँकती। उसके सुनहरे, रेशमी बाल खुले रहते हैं। तंग कपड़ों के बावजूद उसकी चाल बहुत तेज़ है- लगभग बेचैन कर देने वाली तेज़। उसका एक ढंग मुझे हमेशा चकित करता है: चलते-चलते वह अपने हाथ कमर पर रख लेती है और फिर अचानक ऊपरी शरीर को एक ओर मोड़ देती है। उसके हाथों का प्रभाव मैं केवल इतना कहकर व्यक्त कर सकता हूँ कि मैंने पहले कभी ऐसे हाथ नहीं देखे जिनकी उँगलियाँ एक-दूसरे से इतनी स्पष्ट रूप से अलग दिखाई देती हों और फिर भी पूरी तरह स्वाभाविक लगती हों।

मुद्दे की बात यह है कि यह छोटी स्त्री

न जाने क्यों मुझसे नाराज़ रहती है। वह लगातार मुझमें कमियाँ निकालती रहती है, मानो मैं हर पल उसके साथ कोई अन्याय कर रहा हूँ, हर कदम पर उसे सताता हूँ। यदि किसी जीवन को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटकर उसके हर हिस्से का अलग-अलग मूल्यांकन किया जा सके, तो मेरे जीवन का लगभग प्रत्येक क्षण उसके लिए कष्टदायक सिद्ध होगा।

मैं अक्सर सोचता हूँ कि आखिर मैं उसे इतना अप्रिय क्यों हूँ। शायद मेरा व्यक्तित्व उसके सौंदर्यबोध, उसकी न्याय-भावना, उसकी आदतों, परंपराओं और अपेक्षाओं को अनजाने में ठेस पहुँचाता रहता है। हम दोनों एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं, लेकिन यह भिन्नता उसे इतना विचलित क्यों करती है? हमारे बीच ऐसा कोई संबंध भी नहीं है जो उसे मेरे कारण इतना सहने को विवश करे। उसे तो बस इतना करना चाहिए कि वह मुझे अजनबी समझे, जो वास्तव में मैं हूँ। इससे मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी; बल्कि मैं उसका स्वागत करूँगा। उसे केवल मेरे अस्तित्व को भूल जाना है। उस अस्तित्व को, जिसे मैंने कभी उसके ध्यान में लाने की कोशिश नहीं की और न ही कभी करूँगा। तब उसकी पीड़ा समाप्त हो जाएगी।

मैं अपने बारे में नहीं सोच रहा। मैं इस बात को पूरी तरह अनदेखा कर देता हूँ कि उसका व्यवहार मुझे बेहद अप्रिय लगता है। ऐसा इसलिए कर पाता हूँ क्योंकि मुझे लगता है कि मेरी असुविधा उसकी पीड़ा की तुलना में कुछ भी नहीं। हालांकि मैं यह भी अच्छी तरह जानता हूँ कि उसकी यातना में मेरे प्रति कोई स्नेह नहीं छिपा। उसे मुझमें सुधार लाने की कोई चिंता नहीं है। बल्कि उसे मुझमें जो भी दोष दिखाई देते हैं, वे वास्तव में मेरे विकास में बाधा भी नहीं डालते। उसे मेरी उन्नति में कोई दिलचस्पी नहीं। वह केवल अपने हित के बारे में सोचती है। अपने वर्तमान कष्टों का बदला लेने और भविष्य में मुझसे होने वाली किसी मानसिक यातना को रोकने के बारे में।

एक बार मैंने उसे इस निरंतर नाराज़गी से छुटकारा पाने का उपाय सुझाने की कोशिश की थी, लेकिन मेरे उस प्रयास ने उसे इतना अधिक क्रोधित कर दिया कि फिर मैंने कभी ऐसी भूल नहीं की।

फिर भी, सच पूछिए तो मुझे विचित्र-सी ज़िम्मेदारी का अनुभव होता है। आखिर हम दोनों, वह छोटी स्त्री और मैं, एक-दूसरे के लिए अजनबी हैं; और हमारे बीच जो संबंध है, वह केवल उसकी ओर से उपजी चिढ़ का है। मैं उसके उस कष्ट के प्रति उदासीन नहीं रह सकता जो, कम-से-कम उसके अनुसार, मेरे कारण उसे सहना पड़ता है। समय-समय पर, और हाल के दिनों में तो बहुत अधिक, मुझे यह सुनने को मिलता है कि वह सुबह पीले चेहरे के साथ उठती है, रात भर सो नहीं पाती, उसका सिर दर्द से फटा जाता है और वह अपने दैनिक कामों के योग्य भी नहीं रह जाती। उसका परिवार चिंतित है। वे कारण खोजने की कोशिश करते हैं, पर अब तक उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला।

एक मैं ही हूँ जो जानता हूँ कि उसकी इस हालत का कारण क्या है: मेरे प्रति उसकी स्थायी और हर दिन नयी हो उठने वाली खीझ।

लेकिन सच यह है कि मैं उसके परिवार जितना चिंतित नहीं हूँ। मैं जानता हूँ कि वह मज़बूत और सहनशील स्त्री है। जो मनुष्य इतनी तीव्र भावनाएँ अनुभव कर सकता है, वह उनके प्रभावों को सहने में भी सक्षम होता है। कभी-कभी तो मुझे यह संदेह भी होता है कि उसकी पीड़ाओं का कम-से-कम कुछ हिस्सा केवल दिखावा है, ताकि लोगों का संदेह मेरी ओर मुड़े।

वह इतनी गर्वीली है कि खुले रूप में यह स्वीकार नहीं कर सकती कि मेरा अस्तित्व उसके लिए कितनी बड़ी यातना है। दूसरों से मेरी शिकायत करना भी वह अपनी गरिमा के विरुद्ध समझती है। लेकिन दूसरी ओर, यह घृणा लगातार, सक्रिय और थकानरहित घृणा, उसे मेरे बारे में सोचते रहने को विवश करती है। अपनी इस पीड़ा को सार्वजनिक रूप से स्वीकार करना उसके लिए अपमानजनक होगा, पर उसके बारे में पूरी तरह चुप रहना भी उसके लिए असहनीय है।

तब वह, अपने स्त्रियोचित कौशल से, एक बीच का रास्ता चुनती है। वह कुछ कहती नहीं, लेकिन अपने गुप्त दुःख के सारे बाहरी संकेत प्रकट करती रहती है ताकि लोगों का ध्यान इस ओर जाए। शायद उसे आशा है कि जब लोगों का ध्यान मेरी ओर जाएगा, तो मेरे विरुद्ध एक सार्वजनिक आक्रोश पैदा होगा और

वह, अपनी निजी घृणा की तुलना में कहीं अधिक शक्तिशाली होकर, मुझे शीघ्रता से दोषी ठहरा देगा। तब वह स्वयं पीछे हट जाएगी, राहत की साँस लेगी और मुझसे मुँह फेर लेगी।

यदि सचमुच उसकी आशा यही है, तो वह भ्रम में है। जनमत उसकी भूमिका नहीं निभाएगा। जनमत मुझे कभी इतना आपत्तिजनक नहीं पाएगा, यहाँ तक कि आवर्धक शीशे से देखने पर भी नहीं। मैं उतना निकृष्ट व्यक्ति नहीं हूँ जितना वह समझती है। मैं डींग नहीं मारना चाहता। विशेषकर इस प्रसंग में तो बिल्कुल नहीं। लेकिन यदि मुझमें कोई विलक्षण गुण बहुत स्पष्ट नहीं है, तो यह भी उतना ही सच है कि मुझमें गुणों का अभाव भी नहीं है। केवल उसी छोटी स्त्री की नज़र में, केवल उसकी लगभग बुझ चुकी आँखों में ही मैं ऐसा दिखाई देता हूँ। वह किसी और को इस बात के लिए राज़ी नहीं कर सकेगी।

इस लिहाज़ से मुझे निश्चिंत होना चाहिए, है न? नहीं, बिल्कुल नहीं। क्योंकि यदि यह बात फैल गई कि मेरे व्यवहार के कारण वह सचमुच बीमार पड़ रही है- जैसा कि कुछ लोग, विशेषकर वे जो बड़े उत्साह से उसकी खबरें मुझे लाकर सुनाते रहते हैं, पहले ही मानने लगे हैं, और यदि दुनिया मुझसे पूछने लगे कि मैं अपनी इस ज़िद से उस बेचारी स्त्री को क्यों सताता हूँ, क्या मैं उसे मृत्यु की ओर धकेलना चाहता हूँ, और कब मैं इतनी मानवीय संवेदना दिखाऊँगा कि अपना व्यवहार बदल दूँ, तो मेरे लिए उसका उत्तर देना कठिन होगा।

क्या मुझे साफ-साफ यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि मैं उसकी बीमारी के लक्षणों पर पूरा विश्वास नहीं करता? लेकिन ऐसा कहकर मैं अपने बारे में यही धारणा पैदा करूँगा कि मैं दोष से बचने के लिए एक बीमार स्त्री को ही झूठा ठहरा रहा हूँ। और मैं यह खुलकर कैसे कह सकता हूँ कि यदि मुझे यह विश्वास भी हो जाए कि वह सचमुच बीमार है, तब भी मुझे उसके प्रति कोई विशेष सहानुभूति महसूस नहीं होगी, क्योंकि वह मेरे लिए पूर्णतः अजनबी है और हमारे बीच किसी भी संबंध की कल्पना केवल उसी की ओर से पैदा हुई है?

मैं यह नहीं कहता कि लोग मुझ पर विश्वास नहीं करेंगे। वे शायद इस हद तक दिलचस्पी ही न लें। वे केवल उस उत्तर को याद रखेंगे जो मैंने एक कमज़ोर और बीमार स्त्री के बारे में दिया था, और वह मेरे पक्ष में नहीं जाएगा। दुनिया की यह आदत है कि ऐसे मामलों के पीछे किसी प्रेम-प्रसंग की कल्पना कर लेती है, जबकि यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं है। और यदि होता भी, तो वह मेरी ओर से होता, उसकी ओर से नहीं। क्योंकि मैं सचमुच उसकी तीक्ष्ण निर्णय-क्षमता और उसके निष्कर्षों तक तत्काल पहुँच जाने वाली जीवंतता की प्रशंसा कर सकता था, यदि वे गुण हर समय मेरे विरुद्ध हथियार की तरह इस्तेमाल न किए जाते।

वह मेरे प्रति तनिक भी मित्रता नहीं दिखाती। इस मामले में वह पूरी तरह ईमानदार है, और यही मेरी आख़िरी आशा भी है। अपने अभियान को आगे बढ़ाने के लिए भी वह इतनी दूर तक स्वयं को नहीं भूलती कि किसी तरह की भावुक शंका पैदा हो। लेकिन जनमत ऐसे मामलों में अत्यंत असंवेदनशील होता है। वह अपने पूर्वग्रहों से चिपका रहता है और अंततः मेरी ही निंदा करेगा।

इसलिए मेरे पास शायद केवल एक ही रास्ता बचता है: समय रहते अपने आप को कुछ बदल लेना, ताकि उस छोटी स्त्री की कटुता थोड़ी कम हो सके। पूरी तरह समाप्त तो वह कभी नहीं होगी। और सच कहूँ, तो मैंने कई बार अपने आप से पूछा है कि क्या मैं वास्तव में अपने वर्तमान स्वरूप से इतना संतुष्ट हूँ कि उसे बदलना ही न चाहूँ? क्या मैं अपने भीतर कुछ परिवर्तन नहीं ला सकता? भले ही वे मुझे स्वयं आवश्यक न लगें? केवल उसे संतुष्ट करने के लिए?

मैंने सचमुच ऐसा करने की कोशिश भी की। कुछ मेहनत और सावधानी के साथ। और यह प्रयास मेरे लिए आश्चर्यजनक रूप से मनोरंजक भी सिद्ध हुआ। कुछ परिवर्तन हुए भी, इतने स्पष्ट कि दूर से ही दिखाई दे जाएँ। मुझे उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की आवश्यकता नहीं पड़ी, क्योंकि वह ऐसी चीज़ें मुझसे कहीं पहले देख लेती है। वह तो मेरे चेहरे से ही भाँप लेती है कि मेरे मन में क्या चल रहा है। फिर भी मेरे प्रयासों का कोई परिणाम नहीं निकला। और अब मुझे समझ में आता है कि

उसकी आपत्ति मेरे अस्तित्व की जड़ से जुड़ी हुई है। उसे कोई भी चीज़ दूर नहीं कर सकती, यहाँ तक कि मेरा स्वयं हट जाना भी नहीं। यदि उसे यह पता चले कि मैंने आत्महत्या कर ली है, तो संभव है वह क्रोध से पागल हो जाए।

अब मैं यह मान ही नहीं सकता कि इतनी तीक्ष्ण बुद्धि वाली स्त्री यह नहीं समझती होगी कि उसका संघर्ष कितना निराशाजनक है और मेरी स्थिति कितनी असहाय। मैं अपनी पूरी इच्छा के बावजूद उसके अनुरूप नहीं हो सकता। निश्चय ही वह यह समझती है, लेकिन उसका स्वभाव ही लड़ाकू है। संघर्ष के उन्माद में वह सब भूल जाती है। और मेरा दुर्भाग्यपूर्ण स्वभाव, जिसे मैं बदल नहीं सकता क्योंकि वह जन्मजात है; मुझे प्रेरित करता है कि जो कोई भी उत्तेजित हो उठे, उसे मैं शांत सलाह दूँ। इस प्रकार स्वाभाविक ही है कि हम कभी किसी समझौते तक नहीं पहुँच सकते।

मैं हर सुबह प्रसन्न मन से घर से निकलूँगा, केवल उससे टकराने के लिए। और तब उसका वह चेहरा, जो मुझे देखते ही उतर जाता है; उसके होंठों पर तिरस्कार की वह वक्र रेखा; वह नाप-तौलती नज़र, जो पहले से जानती है कि उसे क्या मिलने वाला है; वह तीखी मुस्कान, जो उसके गालों पर महीन लकीरें खींच देती है; आँखों का शिकायत-भरे भाव से ऊपर उठ जाना; कमर पर हाथ रखकर स्वयं को सँभालना; और फिर क्रोध का वह उभार, जो उसे पीला और काँपता हुआ बना देता है। यह सब मेरे सामने उपस्थित होगा।

कुछ समय पहले मैंने पहली बार इस विषय का उल्लेख अपने एक बहुत अच्छे मित्र से किया। बस यूँ ही, चलते-चलते, दो-चार वाक्यों में, और उसके वास्तविक महत्व से भी कम करके; क्योंकि वस्तुतः यह एक तुच्छ-सी बात ही है। आश्चर्य की बात यह थी कि मेरे मित्र ने इसे अनदेखा नहीं किया। उलटे उसने इसे मुझसे कहीं अधिक गंभीरता से लिया। वह विषय बदलने को तैयार नहीं हुआ और इस पर चर्चा करता रहा।

लेकिन उससे भी अधिक आश्चर्यजनक यह था कि एक महत्त्वपूर्ण बिंदु पर उसने पूरे मामले को कम करके आँका। उसने गंभीरता से मुझे सलाह दी कि मैं कुछ समय के लिए कहीं दूर चला जाऊँ। इससे अधिक ग़लत सलाह और क्या हो सकती थी! बात इतनी सरल थी कि जो भी इसे ध्यान से देखता, समझ सकता था। लेकिन उतनी सरल भी नहीं थी कि मेरे चले जाने से सब कुछ समाप्त हो जाता। उलटे, ऐसा जाना तो मुझे हर हालत में टालना चाहिए।

यदि मुझे कोई रास्ता अपनाना है, तो वह यही हो सकता है कि इस पूरे मामले को उसकी वर्तमान सीमाओं के भीतर ही रहने दूँ, जहाँ तक यह बाहरी दुनिया को प्रभावित नहीं करता। अर्थात मैं शांतिपूर्वक यहीं रहूँ, अपने व्यवहार में इसका कोई संकेत न आने दूँ, और इसका उल्लेख किसी से न करूँ। इसलिए नहीं कि यह कोई भयंकर रहस्य है, बल्कि इसलिए कि यह एक तुच्छ, निजी मामला है, जिसे हल्केपन के साथ ही लिया जाना चाहिए और उसी स्तर पर बनाए रखना चाहिए।

इस अर्थ में मेरे मित्र की बातें पूरी तरह व्यर्थ भी नहीं थीं। उन्होंने मुझे कुछ नया नहीं सिखाया, लेकिन मेरे मूल निश्चय को और दृढ़ अवश्य कर दिया।

बहुत गहराई से सोचने पर मुझे कभी-कभी ऐसा लगता है कि समय के साथ जो परिवर्तन इस मामले में दिखाई देते हैं, वे वास्तव में इस मामले में नहीं, बल्कि मेरे दृष्टिकोण में हुए हैं। एक ओर मैं अधिक संयमित, अधिक परिपक्व और चीज़ों की जड़ तक पहुँचने वाला हो गया हूँ; दूसरी ओर इस लगातार बने रहने वाले हल्के तनाव ने, जिसे मैं दूर नहीं कर पाता, मुझे कुछ अधिक चिड़चिड़ा भी बना दिया है।

अब मैं इस मामले से उतना व्याकुल नहीं होता, क्योंकि मुझे लगता है कि इसका किसी निर्णायक स्थिति तक पहुँच पाना बहुत असंभव है, भले ही कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता हो कि वह क्षण निकट है। विशेषकर युवावस्था में मनुष्य निर्णायक घटनाओं की निकटता का अनुमान बढ़ा-चढ़ाकर लगाता है।

जब भी मेरी वह छोटी आलोचक मुझे देखते ही लगभग बेहोश होकर किसी कुर्सी पर गिर पड़ती, एक हाथ से उसे थामे रहती और दूसरे हाथ से अपने वस्त्रों के फीते नोचती, और क्रोध तथा निराशा के आँसू उसके गालों पर बहने लगते, तब मुझे लगता कि अब

वह क्षण आ गया है जब मुझे उत्तर देने के लिए बुलाया जाएगा। लेकिन ऐसा कोई निर्णायक क्षण कभी नहीं आया। कोई बुलावा नहीं आया। स्त्रियाँ आसानी से बेहोश हो जाती हैं, और दुनिया के पास उनके हर व्यवहार पर ध्यान देने का समय नहीं होता।

और इन सभी वर्षों में वास्तव में हुआ ही क्या है? कुछ भी नहीं, सिवाय इसके कि ऐसे दृश्य बार-बार दोहराए गए; कभी अधिक तीव्रता से, कभी कम। उनका केवल संचय होता गया। हाँ, कुछ लोग हमेशा दूर खड़े दिखाई देते हैं - ऐसे लोग जो हस्तक्षेप करना चाहते हैं, यदि उन्हें कोई रास्ता मिल जाए। लेकिन उन्हें कोई रास्ता नहीं मिलता, इसलिए वे केवल अनुमान लगाते रहते हैं, सूँघते रहते हैं, मानो किसी छिपी हुई बात का पता लगाने की कोशिश कर रहे हों। यह उन्हें व्यस्त रखने के लिए पर्याप्त है, पर उससे आगे वे कुछ नहीं कर सकते।

स्थिति मूलतः हमेशा ऐसी ही रही है: अनावश्यक दर्शकों और ताक-झाँक करने वालों से भरी हुई। वे किसी-न-किसी बहाने से अपनी उपस्थिति को उचित ठहराते रहते हैं। अक्सर स्वयं को रिश्तेदार बताकर। और गर्दन बढ़ाकर हर बात में दखल देना चाहते हैं। लेकिन उन्होंने अब तक कुछ भी हासिल नहीं किया, सिवाय इसके कि वे अब भी वहीं मौजूद हैं।

पहले मुझे लगता था कि वे लोग धीरे-धीरे बाहर से आए हैं और इस पूरे मामले का विस्तार हो रहा है। अब मुझे लगता है कि वे शुरू से ही यहाँ थे और संकट की संभावना से उनका कोई विशेष संबंध नहीं है।

और फिर, मैं इसे 'संकट' जैसा बड़ा नाम ही क्यों दूँ? यदि वह कभी आए भी, और निश्चित ही न कल, न परसों, शायद कभी भी नहीं - और यदि जनमत इस मामले में हस्तक्षेप करे, जबकि यह उसकी समझ के बाहर की चीज़ है, तब भी मैं बिना आहत हुए नहीं बचूँगा।

लेकिन लोग यह भी देखेंगे कि मैं सार्वजनिक जीवन में जाना-पहचाना हूँ; लंबे समय से खुले रूप में, विश्वासपूर्वक और विश्वसनीय ढंग से जीता आया हूँ। और यह पीड़ित-सी छोटी स्त्री, जो मेरे जीवन में बहुत बाद में आई है और जिसे कोई दूसरा व्यक्ति शायद सहजता से किनारे कर देता। वह अधिक-से-अधिक केवल एक भद्दा-सा धब्बा जोड़ सकेगी उस प्रमाणपत्र पर, जिसमें जनमत मुझे बहुत पहले ही सम्मानित व्यक्ति घोषित कर चुका है।

यही आज की वास्तविक स्थिति है। इससे मुझे किसी गंभीर संकट की आशंका नहीं होती।

फिर भी, इन वर्षों में जो थोड़ी-बहुत बेचैनी मुझमें बढ़ी है, उसका कारण इस मामले का वास्तविक महत्व नहीं है। कोई भी व्यक्ति लगातार किसी की कटुता का लक्ष्य बने रहने को सहजता से सहन नहीं कर सकता। भले ही वह जानता हो कि वह कटुता निराधार है। धीरे-धीरे वह बेचैन हो उठता है, यहाँ तक कि शारीरिक रूप से भी। वह अंतिम निर्णयों की प्रतीक्षा करने लगता है, जबकि बुद्धि उसे लगातार बताती रहती है कि वे निर्णय कभी आने वाले नहीं।

इसका एक कारण उम्र का बढ़ना भी है। युवावस्था हर चीज़ पर एक अलग चमक बिखेर देती है। उसकी निरंतर ऊर्जा में विचित्रताएँ दब जाती हैं। यदि युवा अवस्था में किसी व्यक्ति की दृष्टि कुछ अधिक सतर्क भी हो, तो उसे उसके विरुद्ध नहीं गिना जाता। कभी-कभी तो स्वयं उसे भी इसका आभास नहीं होता।

लेकिन जो बातें वृद्धावस्था तक बनी रहती हैं, वे अवशेषों की तरह दिखने लगती हैं। और यह स्वाभाविक भी है। मनुष्य का नवीनीकरण नहीं होता; उसकी जाँच होती है। वृद्ध व्यक्ति की सतर्क दृष्टि तुरंत पहचान ली जाती है। फिर भी, जैसा कि मेरे मामले में भी है, यह किसी वास्तविक पतन का प्रमाण नहीं।

इसलिए इस पूरे प्रसंग को मैं जिस भी दृष्टि से देखूँ, अंततः मुझे यही लगता है और मैं इस विश्वास पर बना रहूँगा, कि यदि मैं इस पर अपना नियंत्रण बनाए रखूँ, भले ही हल्के ढंग से ही सही, तो मैं लंबे समय तक अपना जीवन शांतिपूर्वक जी सकूँगा; दुनिया की चिंताओं से लगभग मुक्त, उस छोटी स्त्री के तमाम हंगामों के बावजूद।

बुंदेली बोली का इतिहास एवं परिदृश्य

डॉ. सुधा दीक्षित

शिक्षण सहायक, हिन्दी विभाग, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय-झाँसी
sudhadixit0191@gmail.com

बुंदेलखंड है हृदय भारत कौ, जग में जाको मान।
बुंदेली बोली बनी, हम बुंदेलन की शान॥

बुंदेली बोली मुख्य रूप से हिंदी भाषाअइ की एक उपभाषा पश्चिमी हिंदी कीअइ एक बोली हैगी। जा बुंदेली बोली भारतअइ के एक विशेष क्षेत्र बुंदेलखंड मेंइ बोली जात हैगी। वास्तव में देखो जाय तो बुंदेलखंड की ई पवित्र माटी की जो सबसे बड़ी पूंजीयन में से एक इहाँ की बुंदेली बोली हैगी। बुंदेली बोली इतै सिर्फ बातचीत कौई माध्यम अकेलो नईंया, ईमें तो यहाँ के मनुष्यन की आन-वान, लहू, इहाँ को पसीना, इहाँ को शौर्य और इहाँ की ममता रची-बसी है। जब कऊ बुंदेला मनुष्य अपने घर-अंगना से निकर के कऊँ परदेस में भी दो बोल बुन्देली के सुन लेत है, तो ओको जियरा जुड़ा जात है। जाके बारे में इते के कवि अवधेश जी लिखत हैगे:

बुन्देलखण्ड की सुनो कहानी अब बुन्देली बानी में।
पानीदार इतै को पानी आग इतै के पानी में।।

हिंदीअई भाषा से जन्मी जा बुन्देली बोली ने धीरे-धीरे पूरे मध्य भारत में अपनी धाक जमा लई। उत्तर प्रदेश के झाँसी, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर, महोबा, बांदा से लेके मध्य प्रदेश के सागर, छतरपुर, टीकमगढ़, दमोह, पन्ना और दतिया तक ई बोली को राज चल्लओ है। जा बुन्देली बोली कौ बोलो जायबे बाले क्षेत्र यानि बुंदेलखंड के बारे में एक कवित्त बहुतई प्रसिद्ध हैगो:

इत यमुना उत नर्मदा इत चंबल उत टाँस।
छत्रसाल सों लरन की रही न काहू हाँस।।

अपने समय के बड़ो नाम और बुंदेली के मर्मज्ञ लेखक बादशाह बुंदेली ने अपनी प्रसिद्ध किताब 'बुंदेली लोक-संस्कृति और चेतना' में ई बोली के असली मर्म खों उजागर करो है। इनकी ऊ किताब में बुंदेली की आत्मा खों टटोलत भये उनने जो बात लिखी है, बा हर बुंदेला खों अपनी माटी पे गरब करबो सिखाउत है, "बुंदेली भाषा नईं, हर बुंदेला के हिय की धड़कन आय, जीमें जीबे को सलीको और अपनोपन समाओ है। ईके एक-एक शब्द में जो रस और अपनौत है, वो दुनिया की कऊ भाषा में नईं मिल सकत।"

बुंदेली बोली अकेली एक बोलिअइ नइया, जा समूचे बुंदेलखंड की आत्मा, इतै की मान-मर्यादा और इतिहास कौ जीतो जागतौ दस्तावेज़ हैगों। भारोपीय परिवार से निकरी जा बुंदेली बोली को जनम शौरसेनी अपभंश सेई मानो जात हैगो। इतिहास कै पन्ना पलटो तो पता चलत हैगों कि जा बुंदेली उपभाषा ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के आसपास मेंई जानै अपई स्वतंत्र सत्ता बनाय लई हती। चंदेल राजाओं के राज-काज और वीरगाथा काल के महाकाव्यों में जाको रूप देखबे को मिलत है। जासे जातो बात सिद्धअइ हुय जात हेगी कि जा बुंदेली उपभाषा कभअऊँ अकेले घर और गाँव तक सीमित के नई रई बल्कि जातो राजदरबारों को सुसज्जित करबे तथा बड़े-बड़े महाकाव्यों को रचबे की अपार ताकत हैगी। ई भाषाई

बिस्तार को असर इते के लोक-व्यवहार पे साफ दिखत हैगो। बुंदेलखंड के अलग-अलग हिस्सन में जा बुंदेली बोली के शब्दअइ बदल जात हैंगे, जैसे सागर-दमोह की तरफ जो 'का कर रहे' है, वोई उरई-जालौन की तरफ 'का कर रहो हैगो' हो जउत हैगो और टीकमगढ़-छतरपुर में 'का कर रहे भइया' बन जात हैगो। ई भाषाई विविधता बुंदेली खों कमजोर नईं करती, बल्कि ईके भण्डार खों और गहिरो और रसीलो बना देत है । ई भाषा की लचक एतनी अद्‌भुत है कि ईमें कठिन से कठिनअऊ दार्शनिक बात खों भी बड़े सीधे ढंग से कहो जा सकत है, जेखों सुनके कौनऊ अनपढ़ मनई भी पूरी बात एक बार में समझ जावे।

बुंदेलखंड की माटी में जनमे रीतिकाल के कवि पद्माकर ने अपनी रचनान में बुंदेली के शब्दन को ऐसो सुघर प्रयोग करो हैगो, कि रीतिकालीन लेखन में श्रृंगार रस और बीर रस जीवन्तअइ हुय उठो। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपई अमर किताब 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में पद्माकर के लाने लिखो हैगे कि - "पद्माकर की भाषा में जो अनुप्रास की सुसंगठित योजना है और बुंदेलखंडी शब्दों का जो स्वाभाविक और मधुर ढाल है, वह अन्य किसी कवि में दिखाई नहीं पड़ता। उनकी भाषा चलती हुई भी पूरी तरह से काव्यात्मक है। पद्माकरअऊ ने गंगालहरी और प्रबोध पचासा जैसी रचनान में बुन्देली मानस की भक्ति और ओज खों पूरी दुनिया के सामने रख दओ हैगो। ईके साथ ही, बुंदेलखंड की बीरता को बखान करवे वाले कवियन में लाल कवि को नाम भी बड़ो ऊँचो तथा आदर से लओ जात हैगो। लाल कवि को पूरो नाम गोरेलाल पुरोहित हैगों । इनई ने महाराज छत्रसाल के जीवन पे 'छत्रप्रकाश' की रचना करी हती । लाल कवि ने छत्रप्रकाश में बुंदेली बीरता खों उकेरत भये लिखत हैगे कि,

छत्ता तेरे राज में, धक-धक धरती होय।
जित-जित घोड़ा पग धरे, तित-तित फत्ते होय॥

इनकी ई पंक्तियाँ केवल कबिता नईं हैंगी, जा तो बुंदेला आन-बान-शान और स्वतंत्रता की लड़ाई को अमर करवे को उद्घोष हैं, जे पंक्तियाँ आज भी हरएक बुन्देली के भीतर स्वाभिमान जगा देत हैंगी। बुंदेली बोली जा अकेली प्रांतीय बोलिअई नईया, बल्कि जा बोली हिंदी भाषा की रीढ़ की हडडी जैसी हैगी। जामै ओज यानि वीरता और श्रृंगार यानि माधुर्य दोनोंई रस समान रूप से देखबे कौ मिलत हैगे। एक तरफ तो जामै वीर जोद्धा आल्हा की तलवार सी धार हैगी, उतैई दूसरी ओर जामै ईसुरी की फागों और राई की थाप की अनौखी मिठास हैगी। जा बोली भौगोलिक और राजनीतिक उपेक्षा के बावजूद भी अपई भाषाई शुद्धता, जीवंतता और जन-स्वीकार्यता के कारण भारतीय बोलियों के मुकुट पर एक जाज्वल्यमान रत्न की तरह सुशोभित है।

बुंदेलखंड की जा पबित्तर माटी साहित्यिक चेतना, धरम-करम और संस्कृति की सम्पन्नता मेऊ आगे रई हैगी। इत्ते आदि-काल से लैके, आज तक के सबसें बड़े-बड़े साहित्यकारन ने जनम लओ हैगो । जिनमें महर्षि बाल्मीकि, बेद ब्यास, गोस्वामी तुलसीदास, जैसे जुग-जुगांतर के महापुरुस और देव-तुल्य रचनाकारों से लैके आधुनिक काल में देस खों जगावे बाले राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, करुणा के सागर सियारामशरण गुप्त, इतिहास खों जीवन्त करबे बाले बाबू वृन्दावनलाल वर्मा और आज के जुग कौ साच बयाँ करबे बाली मैत्रेयी पुष्पा की जाई जनमभूमि हैगी। बुंदेलखंड कौ भूगोल में कतऊ से अकेलौ माटी-पत्थर कौ नाँव नईं आय है, जा तौ समूचे देस की प्रज्ञा और बिचारधारा की असली जन्मस्थली हैगी । आदिकाल से लैके आज तक की जा साहित्यिक यात्रा जई माटी के संस्कारन से जनमी और सींची गई हैगी।

अगर हम इतै के सांस्कृतिक परिदृश्य की बात करें तो बुंदेलखंड के मेले और हाट-बाज़ार इत्ते की सामाजिक एकता के सबसे बड़े गवाह हैंगे। ओरछा को रामराजा को मेला, रहली को सूर्य मन्दिर को मेला और बड़ौनी को मेला केवल ब्यापार के काजे नईं होत, इत्ते तो दूर-दूर से गाँवअन के लोग एक-दूसर से मिलवे और सुख-दुख बाँटवे के काजे आउत हैंगे। इन मेलन में जब बुंदेली गारी, सवाँग और राई की तान गूँजत हैगी, तब इते को पूरो माहौलअइ बादल जात हैगो। जा

सब एक अनूठे रंग में रंग जात हैगो। डॉ. नर्मदाप्रसाद गुप्त ने अपई किताब ‘बुंदेलखंड की लोक संस्कृति का इतिहास’ में लिखत हैगे कि -“बुंदेलखंड के मेले यहाँ के लोक-जीवन के जीवंत सांस्कृतिक केंद्र हैं। इनमें न केवल आर्थिक विनिमय होता है, बल्कि बुंदेली लोक-कलाओं, गीतों और सामाजिक संबंधों का पुनर्जीवन भी इन्हीं मेलों के माध्यम से होता है।” इन मेलन में किसानी जीवन के औजारन से लेके, मेहरारूओं के सिंगार को सामान और नेक-नेक से बच्चन के लाने खिलौना तक बुंदेली संस्कृति की अमिट छाप लए भए होत हैंगे। इत्ते की ‘पंगत’ की परम्परा भी बड़ी ही अद्‌भुत हैगी, जेमें जात-पात को भेद मिटाके सब लोग एकई पंक्ति में बैठके पत्तल पे भोजन करत हैंगे, जो सामाजिक समरसता को बड़ो भारी उदाहरण हैगो।

बुंदेलखंड की लोक-चित्रकला में ‘मामुलिया’, ‘टेसू’ और ‘नौरता’ को बड़ो महत्व हैगो। जा खेल में कुँवारी बिटिया, लरका भादों के महिना में मामुलिया पूजत हैंगे, जा मामुलिया में कटीली झाड़ी खों ओढ़नी उड़ाके, ओपे गहने सजाए जात हैंगे और फिर गीत गाउत भये सबअइ जने वाखों नदी में विसर्जित करन जात हैगे। ई लोक-परम्परा के पीछे बिटियन-लरकन के सुघर भविष्य और हरियाली की कामना छिपी होत हैगी। डॉ. अर्जुन सिंह चन्देल ने अपने शोध ग्रन्थ ‘बुंदेलखंड की लोक शिल्पकला’ में लिखत हैगे कि, “मामुलिया और नौरता जैसे व्रत बुंदेलखंड की कन्याओं के कलात्मक बोध और उनके प्रकृति-प्रेम को दर्शाते हैं। मिट्टी और प्राकृतिक रंगों से बनाई जाने वाली आकृतियां प्राचीनतम भित्तिचित्र परंपरा का हिस्सा हैं।” ये सब बातें ई बात की गवाही देत हैं कि बुंदेली संस्कृति कौनउ महलन में बन्द नईं रही, ये गाँव की माटी, दीवालन, और मेहरारूओं के आँचल में पनपी और फली-फूली है।

निष्कर्ष के तौर पे बुंदेली बोली अकेली एक बोलिअई नईया, जा बुन्देली माटी की आत्मा, इत्ते की संस्कृति और इत्ते के गौरवशाली इतिहास कौ अपये में समेटे हुये, जा एक जीती-जागती धरोहर हैगी। अगर हम जा बुंदेली उपभाषा के संवर्धन की बात करें, तो ई भाषा ने इतिहास के हर थपेड़े खों झेलो है पर अपनी मिठास नईं खोई। चंदेलों के महलों से लेके, बुंदेलों की तलवारन तक, और ईसुरी की फागन से लेके आज के किसान के हँसिया तक, बुंदेली हर जगह मुस्तैदी से खड़ी है। आज के समय में जब आधुनिकता को बोलबाला है, तब भी बुंदेली की धमक कम नईं भई। ज़रूरत सिर्फ ई बात की है कि हम अपनी भाषा पे सदैव गर्व करें, इको उत्थान करें, काय से कि जननी और जन्मभूमि स्वर्ग सेऊ बड़के होत हैगी।

बुंदेली कहानी

निर्णय के अंतिम क्षण

साकेत सुमन चतुर्वेदी

हिंदी एवं बुंदेली भाषा में लेखन

“दद्दा-ओ-दद्दा तुम सुन काय नहिं रये।”

“का है बेटा?, हरिया ने अपनी पाँच साल की बिटिया छबीली खों जबाव दओ।

“मोय कसकें भूख लगी है दद्दा।”

“भीतर के कमरा में मटेल्नी में रोटीं धरीं हैं सो खा लो।”

“साग तौ है नईयां काय में खाय?”

“रोटी में घी चुपरकें शक्कर रोटी पें डारकें कट्टू बनाकें खालो बेटा”, दद्दा हरिया नें कयी।

मोंडी रिसाकें बोली, “आज तौ साग के संगें ही खैहों रोटी।”

“भीतर चल बेटा हम साग की जुगाड़ करत।”

“जल्दी आइयो दद्दा”

हओ कह के बात टाल कें हरिया जानवरन की सार खों चलो गओ । ऊनें गैया भैस और बैलन के लानें भुसा और चून की सानी बनाई और ढोरन के खाबे उनकी थान पें धर दयी।

उतै सें लौट कें घरै आकें मों हाथ पांव

धोय और स्वाफी से पोंछ कें जैसई भीतर आओ कि दोरे पें ठिठक कें रै गओ । ऊनें देखो छबीली कांसे की थारी में रोटीं फैलाय उंगुरी सें संकेत करकें बोल,"रयीती जा एक रोटी दद्दा की, जा रोटी बाई की, जा रोटी घन्सू भैया की और जा रोटी हमाई।"

हरिया के सामें बे दिनां घूमन लगे जब पंद्रह साल पैला गांव के पास के गांव में बैन-भैया के गुजरे मताई-बाप के घर में अकेले हरिया कौ ब्याव नाते रिश्तेदारन की कोशिश सें जुगनू से भओ तो। जुगनू सांवरे रंग की लेकिन नाक-नक्स से नौनी छवि वारी गठीली युवती हती। दस पास हरिया खों पांच पास जुगनू दुलैया के रूप में मिलीती। थोरी सी जागां में खेतीबारी करकें और भैंस-गैया कौ दूध बैच कें साल भर की गुजर-बसर, हँसी-खुशी में हो जातती। मंदिरन में पूजा-पाठ, दान दक्षिणा और मन्नत करवे सें पांच साल बाद उनकें घंसू जन्मो तो हरिया नें खुशीं अपनी औकात से ज्यादा मनावें में पैसा खर्च करवे में कौनऊं कसर नहीं छोड़ीती। घंसू के जन्में दो साल बाद छबीली जुगनू के पेट मे आगईती। हरिया आगें बढ़ कें घर और बाहर के सबरे काम अकेलें करन लगो। जुगनू बढ़िया खाय-पियें आराम करें जौ ध्यान दैन लगो। नवें महिने में जुगनू के पेट में गर्भ कौ दरद भओ गांव की जौन लुगाई भओ कराउती ऊंनें सला दयी की बात बस के बाहर है सो जुगनू खों झट्ट पास के गांव अस्पतालै लै जाव। हरिया बैलगाडी सें जुगनू खां अस्पताल लै कै पौचो। डाक्टर की कोशिश सैं छबीली कौ तौ जन्म हो गओ लेकिन खून बैवो डाक्टर कंट्रोल नहीं करपाओ और हरिया घंसू खांरोत बिलखत छोड़ जुगनू भगवान की प्यारी हो गई। परलोक चली गई जौ लोक छोडकें। नन्ही छबीली और घंसू के पालवे-पोसवे और पढ़ावे-लिखावे की जिम्मेदारी अब अकेले हरिया पें आ परीती जिये वौ भलींभांति निभाओतो लेकिन जुगनू के बिना ऊके ख्याल में डूब वे सें जैसें ऊकी खुशियन कीं फसलें ज्यु में सूक गयीं ती।

"दद्दा! तुम दोरे पें ब्लात देर सैं ठाड़े का कररये?", घंसू के झंझकोरवे पै जैसें ऊकी तंद्रा टूटी ।

"कछू नईं बेटा, मैं तौ छबीली कौ कौतुक देख रओतो।"

छबीली इन लोगन सें बेखबर अपने रोटी खेल में लगीती जा रोटी दद्दा की जा बाई की जा...।

हरिया घंसू कौ हाथ पकरकै ऊके ऐंगर पहुंचो। उन लोगन के आवे पें छबीली कौ खेल रुक गओ। ऊंखो बिना मताई की बिटिया कौ ज्यु में देख कौ धक्का लगो आँखन में अँसुअन कीं तलैयां भर आईं। कभऊं अपने भाग कभऊं खुद खों कोसन लगो । छबीली की मुढ़ी पै हाथ फेरवे की बेरां छबीली ऊकी ताईं तकन लगी।

अचानक हरियां खां ध्यान आओ और बोलो, "घंसू, टुकनिया में मैथी की भाजी धरी है उठा तौ ल्याव।"

घंसू उठ कें गओ और बोलो, "दद्दा ईमें तौ भाजी नैयां।"

"नईयां! कितै गयी मैने तौ रखींती?"

"तोय पतौ है बिन्नू?"

"हओ दद्दा", छबीली बोली

हम बतांय।

हाँ बताव बेटा उसने उत्सुकतावश पूछा।

"वा मैथी की भाजी तौ मैंने हल्की छिरिया बकरी खों ख्वा दई।"

"छिरया खौ खुबा दयी तैंनें?",वे आश्चर्य से बोले।

"दद्दा बा भूकी हती सो खुबा दई।"

"अच्छौ करो बेटा, अब रोटी के संगें भाजी कीं जागां मोय खालो।"

"हओ, मैं शेर हों अब तोय खाबी दद्दा", और शेर की जैसें नकल उतार कें दद्दा पें झपटी।

"कच्चौ चबा जैबी तोय सैगो चीर दैवी...अब बचौ दद्दा।"

हरिया थोरी दूर भगो बोलो, "बिन्नू मो सें गलती हो गई मोय बख्शौ।"

दद्दा नें दोऊ हाथ जोर दये। घंसू खां तारी बजात देख छबीली ऊकू तरफ कूद-कूद कें जा पौंची- अब मैं तोय खैहों।

"दद्दा बचाव मोय! घंसू एक तरफै भगवे कौ स्वांग करन लगो और तीनऊं मस्ती खुशियन में डोलन लगे।

हरिया उठो ऊनें टुकनिया में धरी हरे धना की पत्ती, हरी मिर्च और कैथा उठाव और नौन संगै सिल पै धरकें लुड़िया सें चटनी पीसन लगो। चटनी रोटीं एक टाठी में धरी और तीनऊ मिलजुल कें खान लगे।

"दद्दा काल भैया नें मोरी एक रोटी चुरा कें खा लईती।"

"काय रे! यैसों करत तें?"

"अहां दद्दा जा मोय फटकार लगबावे झूठ बोल रई", घंसू ने सफाई दई।

"खाव राम कौ कौल", छबीली

बोली।

"राम धई दद्दा।"

हरिया हँस के बोलो, "तुम और झूठ बोलबू करे तनक-तनक सीं बातन पें। मिल-बाँटकें खाय चाही।

"हओ दद्दा, झूठ बोलबू पाप होत ईसें झूठ नईं बोलबू करे।"

"हओ दद्दा", दोऊअन नें हामी भरी।

प्रेम सें छबीली की मुढ़ी पैं हाथ फेर के हरिया नें पूछी, "एक बात बताव बिन्नू।"

"का?"

"जब तोरी मताई जिंदा नैयां तौ तें ऊके नांव की रोटी काय गिन रईती?"

"बाई खां भोग लगावे, जैसें देवी मां खां भोग लगात हैं।"

जौ सुन कें जुगनू की याद की पीर कौ तीर हरिया कौ हिय चीर गओ।

एक लम्बी साँस खींच कें बोलो, " चलौ अब सो जांय ब्लात टैम हो गओ। तैंने नौनो करो बेटा जौन मताई खां रोटी कौ भोग लगाओ।"

हरिया उठो ऊनें चटाई बिछाई ऊपें कथरी बिछाई अपने एक तरफ घंसू खां और दूसरी तरफ छबीली खां पारकें लिटाकें, सो गओ।

भुंसारें मचौ हल्ला सुन कें ऊकी नींद खुल गई, "का हो गओ?"

ऊनें दोरे के बंद किवार खोले सो भौचक रै गओ। कायकें दस दिनां से पानी बिनारु कें खूब बरसवे सें नदिया पें बने बंदा में दरार आ गई ती और वौ पानी की मार। झेल नईं पाओ सो दरक गओ और पानी सें नदिया उफना कें तांडव विनाशक रूप धर बैठी। हल्ला और हालत खां भांप हरिया नें दोऊ बच्चा झट सें जगाए और उनें सब बता दोरे से मंदिर कै लानें भगो काय कें मंदिर एक ऊंचे टीला पें बनो तो। बचवे के लाने कछू मंदिर कछू घर के ऊंचे अटा पें कछू पेड़न पें चढ गये कछुअन खों ऊंची ठौर नई मिली सो वे खूब चढी नदिया के संगें बै गये। बेचारे जानवर कुत्ता, बिल्ली, मुर्गी, छिरिया और जौन पेड़न पे नईं चढ़ सकते और नईं उड़ सकते पानी की चपेट में लोगन के घर के सामान के संगें बै रयेते। सबरें बचौ बचाव को हल्ला रोबो की आवाजें आ रयीं तीं सब अफरातफरी में चिंता में हते भगवान खां सुमररये ते। नदिया कस कें दमचौरा मचाये ब्लातन खां लील गई ती। बाढ़ घटवै की जांगा हर घरी और उफनान लगी। टीलों डूबो फिर मंदिर डूबन लगो, लोग लुगाई मोंडी मोंडन डराने मंदिर की खुली छत पे सिढ़ियाँ चढ़ कें पौच गये पर हत्यारौ नाशमिटो पानी भी उते पौंच गओ।

पानी छत पें ठाड़े लोगन की करयाई के ऊपर चढ़न लगो। चिंता में डूबे हरिया खों कछू बचबे कौ उपाय नईं सूज रओ तौ छबीली घंसू घबरा के डरनके मारे दद्दा-दद्दा कैकें हरिया सें कसकें चिपक गये। हरिया ने देखो पानी मुढ़ी ताईं चढत जा रवो है ऊने झट्ई छबीली खां उठा पीठ पें लाद लओ और ठाढ़े घंसू कौ बखा बाँह सें कसकें गुपयालओ। पानी की तेज धार की मार न झेल पावे सें हरिया घंसू के खंभा से थमे पांव उखर गये और बाप-बेटा औरन कीं नाईं नदिया की बाढ़ में लोरन बैन लगे।

छबीली नें पीठ पें लदें-लदें बाप की घिची में दोऊ बाँहें डार लईतीं। हरिया एक हाथ सें घंसू की बांह पकरें दूसरे हाथ और गोड़न के सहारें तैरत-तैरत गांव सें मुलक मील धार में अपनौ जोर लगायें। बचवे में शरीर सें थक कें टूटन सें हार कें मजबूर हो गओ। ऊके ज्यू में चिंता कौ बगबूड़ो जैसों उठ कें उत्पात सौ मचान लगो। ई हालात में मजबूर हारे नें राम खां सुमरो और ऊंके दिमाग में ई परिस्थिति में छबीली और घंसू दो में सें एक खां बचावे और दूसरे खां खुद बचबे भगवान भरोसें नदिया में अपने सें अलग करवे की बात कोधीं लेकिन, जान सें ज्यादा प्यारीं आंखन कीं तारीं दोऊ संतानन में किए नदिया में छोड़ कें एक की खां बचाव जाय। अपनी कोनऊ संतान खां अपने सें अलग कर कें नदिया की धार के हवालें करबो हरिया खां जैसें संतान की अपने हाथन देवी-देवता के सामूं बलि चढ़ाबो जैसों लगो। अगर मोंड़ी खों नदिया की धार में छोड़त है तौ लोग कैहै कि हरिया मोंड़ी खों बोझ समझततौ सो मौत के मौं में ढकेल आओ और अगर मोंड़ा कौ हाथ छोड़त है तौ लोग कैहै कि मताई नईंती और हरिया मौंड़ी खों ज्यादा चाउततौ सो मौत के हवालें कर आओ। जब कें एक बाप होवे पें ऊकी नजर में दोउअन संतानें बरोबर हतीं। वो दोउअन खां जान सें ज्यादा चाउत हतो। दोउअन में कोनऊ भूल कें भी भेद नईं करततो। ऊके ज्यु के भीतर ख्यालन कौ जैसें समुद्रमंथन तेजी सें हो रओतो लेकिन अब एक खों बचावे के लानें दूसरे खों अपने सें अलग करबो जरूरी हो गओतो निरनय लैवे की अंतिम बेरां के क्षनन में तेज धार में बैत-बैत आकाश की तांईं देखो और ऊपर बारे सें गुहार लगाई कि ये दुनियाभर के पालनहार! यैसी दशा में अगर तुम मोरी जगां होते तो का न्याय में निरणय लेते?

बुन्देली कविताएँ

लाकडाउन में मड़इयाँ में रयो, रामकथा, बुन्देली भाषा में दो हाइकु

निहाल चन्द्र शिवहरे

उपाध्यक्ष, बुन्देली साहित्य उन्नयन समिति-झाँसी
ncshiv@gmail.com

लाकडाउन में मड़इयाँ में रयो

मौं बाय कितै जा रये
कोरोना में भी गर्रा रये
का तुमाये मताई बाप
कछु नहीं समझा रये
घर मैं नईंया खाबें कौं
फिर भी दारू पीं कैं
बाप की कमाई उड़ा रये
भूखे प्यासे तुमाये मौड़ी मोड़ा
इतै उतै रोटी के लाने
लाइन में धक्का खा रये
घर में रओ मोदी जी समझा रये
योगी जी घर बैठें रूपईया भिजवा रये
तुमाये जैसे लम्पट जुआ में उड़ा रये
बिना बात मटक रये इते उतै
जाईसें पुलिस के डंडा खा रये
डंडा खाकें अब काय
हल्दी चूना लगवा रये
लाकडाउन में मड़इयाँ में रयो
हम तुमै बार बार समझा रये।

रामकथा

घुटरन चलत हते अयोध्या में राम
हमरे ओरछा में राजा बनके पधारे
धन्यभाग बुन्देलन के
कै कलजुग में लेंकें अवतार
ओरछाधीश बन वेत्रवती के तीर
पुख्य नक्षत्र में महाराज
ओरछाधाम भले पधारे जू।

अपुन सें ऐसोई नेह जौरें रइयो
निहुर के हम आपहीं कै पैरया लागा
विनती आपहू सें हमरी
विघ्नन के बिगना विनाशें रामजू
वेतवा भई गंगा सी
बुन्देलखण्ड की आन बान
तुम्हरे आवन से बनी पहचान
सरद जुन्हैंया सी पहरन तुम्हारी
मनको भावै फेंटा व पाग में छवि न्यारी
ढांक, ढेंका नगड़िया,
डुगडुगी, रमतूला संग
बर्दी में जवान देत
रामराजा को जुहार-गुहार न्यारी।

जमाने भर के मंदर में
नइयाँ यहाँ सी रीत पुरानी
राजा रानी के लाने रा
म मौड़ा बनके ओरछा आये
जाइसे वे मंदर न जाकर
रानी महल में निवास बनायके रहत हैं
प्राण प्रतिष्ठा नाय भई जायसे
मोड़ा राम दरसन दैवे
मंदर से बाहर आयकें
इतै उतै से आये भक्तन को देत आशीष हैं,
जायसे हम भक्तन से कहत हैं
फिरकें अवाई होवे जू ओरछा में।

बुन्देली भाषा में दो हाइकु

जुन्हैया तरें
जुगिया खेलें जनीं
झींका बजावें।
हिंदी भावार्थ - चांदनी के नीचे महिलाएँ बारात जाने के बाद खेला जाने वाला खेल जुगिया, मंजीरा बजाकर खेल रही हैं।

ओढ़नी ओढ़े
अटाई पै आड़ में
अच्छत मौड़ी।
हिंदी भावार्थ - सिर पर दुपट्टा रखे छत पर पर्दे में कुंवारी बिटिया।

Meharchand's Prayer (Story-Part 2)

Dr. Achala Sharma

Former Head of BBC Hindi Service
achala.sharma@gmail.com

In the early days, Mehar-e-Alam shared a two room-flat with four men. He felt suffocated. It was impossible to find a clean corner to say his Namaz prayers. The rest of them had a very filthy lifestyle. Quite often in the morning he would find bones of chicken they had eaten the night before scattered around on plastic plates. He felt as if he was living in a butcher's shop. How can he possibly live in such conditions, that too in the UK? Perhaps one of the reasons for this feeling was that he had seen Fareed Bhai's beautiful and clean house. Anyway, he lived in that flat for five years. Had he opted to rent a place on his own, it would have cost him a lot more than what he paid there.

When his financial situation improved, he started to look for a room of his own. He found out about one flat which was above a shop close to the Indian sweets shop. He took Navin bhai to see it. The flat consisted of a small living room, two small bedrooms, kitchen and bathroom. It was not in great condition, but it felt like heaven as compared to where he had been living. But the rent was £400 a month which was too much for him. Though he loved the flat but wondered if he paid four hundred pounds for rent, what would he eat or send home for that matter?

Navin bhai suggested, "You won't get such a cheap flat again. Why don't you look for a tenant? You need only one bedroom. The other can be rented out."

Mehar-e-Alam liked the idea but there was one concern. What if the tenant does not keep the place clean but the bigger concern was how to get a tenant in the first place.

"Why don't you put an advert in my shop window or in the new agents? Write your phone number on it so that whoever wants the room can contact you."

By that time Mehar-e-Alam had bought a second hand mobile. Days went by but he didn't get a single call. He had already paid a month's advance for the flat. Suddenly, on a Friday when he was returning from the mosque, the mobile rang. It was a woman's voice who was probably speaking Gujarati. Mehar-e-Alam in his broken English tried to explain that he didn't understand.

"No Gujarati," he said. She switched to English. Mehar-e-Alam got more confused. He could understand a few words of English but to comprehend full sentences of English was unthinkable. He got frustrated.

"Talk Urdu."

That worked. In short, she needed a room. She was going through a bad patch. Her husband, with whom she had come to the UK, had left her. The in-laws too had disowned her. Mehar-e-Alam was worried about two things. Firstly, how will she pay the rent and secondly, she is a woman. She assured him that she works in a shop in Wembley and would pay the rent regularly. Mehar-e-Alam was still uncertain. For all this time he didn't even think about a woman. All his energy was focused on one thing that he must make something of his life so that his family in Lahore can live comfortably. Living with a woman may cause some trouble. God alone knows what she is involved in. And to make matters worse, she is a Hindu. Navin Bhai too is a Hindu but he is different. Mehar-e-Alam has often heard abusive language against Muslim community and Pakistan at Navin Bhai's saloon. His blood boils when he listens to such comments but restrains himself.

He remembers how explosive some of the conversations got following the 7July bombings on underground trains. He could feel the venom in their words against Muslims. One day, Ramesh and Vinod both sided with Chetan Patel when he said, "In my opinion all Muslims should be banished from this country, first of all the Pakistanis. Have you ever heard of a Hindu involved in bomb attacks? Muslims are such thankless people that they bite the hand that feeds them."

Ramesh responded, "You are absolutely correct Chetan bhai. Poor Hindus are hardworking people. But the majority of the good for nothing asylum seekers are Muslims who enjoy the state benefits."

And Vinod, glancing at Mehar-e-Alam added salt to the wound by saying, "I would not even hesitate to say that never trust a Muslim even if he changes his appearance to look like a Hindu."

Mehar-e- Alam was probably among the very few who declined the free food coupons even though he was entitled to them. The reason being, he considered earning his living through hard work to be the true way of Islam. Vinod and Ramesh are well aware of the fact that Navin bhai does not tolerate such talk. Navin bhai has also sternly warned them, "Do not ever reveal Mehar-e-Alam's identity in front of a client."

Navin bhai often takes him to Hindu homes for hair cutting ceremonies of children where Mehar-e-Alam earns good money on top of his salary. On one occasion he asked Mehar-e-Alam to accompany him to Swami Narayan Temple and said, "Hindu Pundits need a haircut."

Mehar-e-Alam was apprehensive. "But Navin bhai, if somebody comes to know who I am, there could be trouble."

"Nobody will know. Your name is Meharchand. Just don't say anything."

How many Muslims have visited the Swami Narayan Temple? Mehar-e-Alam felt the pride. It is all because of Navin bhai. That is the reason when Navin bhai convinced him that 'poor girl seems to be in trouble and offering her a room to stay could be a noble deed.' Indeed, Mehar-e-Alam thought. He too owes his life in this country to the blessings and noble deeds of others. Now it is his turn to help someone else.

The day Nandini came to his flat as a lodger, Mehar-e-Alam felt his status rose to that of a landlord. In the initial months, Mehar-e-Alam hardly exchanged a few words with her but gradually a kind of friendship developed. And now it is a different story. Somehow, he found it difficult to pronounce her full name-Nandini. He called her Nain. One day she explained that 'nain' means 'eyes'. This pleased him, what an apt name he had given her for he found her eyes to be the best feature on her face.

The access to his flat is from a staircase at the rear of the shops where there is a car park as well. But what irritates him most is that the narrow gully is generally littered with empty cardboard boxes and tins which belong to the adjacent shops. He literally has to struggle to get to the staircase. As he climbed up the first step, he thought of buying Indian sweets for Nain. She loves Jalebi. He headed back to the shops and found that the Indian sweet shop was as busy as it always is on weekends. On weekends he makes special Jalebi and people from far and away come to buy his Jalebi and Gujrati Dhokla. He bought 250 grams of Jalebi and found an opportunity to remind the shopkeeper, who happens to be his landlord as well, to

complain about the kitchen tap that has been leaking for over a week now.

"Yes, yes. I remember..." Patel said hurriedly. "Shall I pack some Dhokla as well? It is freshly made."

"No, Jalebi is fine."

In fact, Mehar-e-Alam had no clue as to what Dhokla is before he met Nain. For the first time when she made it at home and offered him, he hesitated to eat it. When she insisted that he should at least taste it, he took a bite. In the beginning when Nain had moved into his flat, he cooked for himself or would eat Kebabs before reaching home. But one day Nain insisted, "Why don't you eat at home? I cook for myself and am happy to cook for you too. Of course, I can't make non vegetarian food but if you feel like it, occasionally you can make it yourself. I have no problem with that."

To Mehar-e-Alam's surprise, Nain is a good cook and offers a variety. He simply relishes her cooking, so much so that he hardly thinks of cooking non-vegetarian food. What if he forgets the taste of non-vegetarian food? He finds the thought quite amusing. Just to reassure himself he sometimes goes to the Kebab House and occasionally cooks at home as well. Not often though, out of consideration for Nain who is a pure vegetarian. For a long time now, they have had their dinner together. Sometimes they watch a Hindi movie on a DVD after dinner. Nain loves Hindi movies and he can always get the latest ones from Navin bhai's shop. Mehar-e-Alam hardly ever watched a Hindi movie when he was in Pakistan though they were freely available. And now he hardly ever misses a new movie. After the film show, Nain goes to her bedroom and he comes to his room.

He can never forget when four years ago, one night Nain had come to his room. She stood in the doorway for a few seconds.

"What is wrong? Can't you sleep?" He had asked.

"Can I sleep with you today?" She had asked.

Mehar-e-Alam could clearly hear his heart pounding in his chest. What kind of challenge Allah wants him to face? It is not that he didn't like her or didn't feel sexually attracted to her but at that moment he simply couldn't utter a single word. He moved to one side making space for her and she quietly came to lie down beside him. After so many years he felt the warmth of a woman's body next to him. He was quite surprised when she took the next step too and undressed herself as well as him. What followed seemed simply

natural and destined.

When he woke up for the early morning Namaz, she was not there. Maybe it was all just a dream.

But it was not a dream. When they met for breakfast she said, "I hope you would not take me to be a fallen woman."

Mehar-e-Alam quietly and gently took her in her arms. In Lahore, his relationship with his wife was merely a sexual one which resulted in the birth of their four children. It was a completely new feeling for Mehar-e-Alam that an embrace alone can be so satisfying. Since that night, Nain has often come to his bedroom but she always leaves before dawn. Mehar-e-Alam wonders why, but has never been able to ask her. Nor does he have the courage to take the initiative. He fears that if he does either of the two, the magic of those few nights would be lost.

He opened the door to his flat. There were quite a few papers and pamphlets of various political parties scattered near the door. He picked them up and wondered if Nain is back from work. But noises from the kitchen reassured him.

"It is not ready yet. You can have a shower in the meantime." She called.

Mehar-e-Alam always takes a shower when he returns from work. He looked at his beer belly and felt ashamed. Of late he had been drinking a lot of beer but now sometimes takes a glass of red wine instead. Somebody said that red wine is good for heart. Last year he regularly went to the gym four times a week. He paid an annual membership for the local fitness centre and within a month became much fitter. Nain smiled and said, "Look at you. You look so young."

"Young?" he laughed. "I am forty five years old."

It has been five years since she moved in. She pays her rent on time each month though Mehar-e-Alam finds it embarrassing to take rent from her now. Once he protested but she responded by saying, "Well, you do the grocery shopping each month. Think of it as my contribution towards running the household in partnership."

That is true of course, they are indeed running this household as partners. Or as friends! But is it just friendship? When he stepped out of the shower she said, "Dinner will be ready in another ten minutes. I am sorry I got late today."

"Can I help?" Mehar-e-Alam asked even though he knows that his role in the evenings is to do the washing up after dinner.

"No, it is fine. Why don't

you say your Namaz while I finish."

"I have brought Jalebis for you."

"Yes, I have already seen," She smiled.

Mehar-e-Alam read the Maghrib Namaz and returned to the living room. He took a bottle of red wine and poured it into a large glass.

"This is a beer glass. Not meant for wine." Nain would object.

But somehow, Mehar-e-Alam does not enjoy drinking wine in a small glass. What is the point of sinning and not fully enjoying it? He took a long sip and tried Fareed bhai's telephone number once again. The landlord hardly gave any furniture except for a broken chair. When Fareed bhai bought a new sofa, he gave him his old one. He remembers how on Nain's suggestion, he bought paints and brush and together they had painted the whole flat. He loves to return to this flat after a day's work. He loves to return to Nain.

"Let us eat." Nain interrupted his train of thoughts and he went into the kitchen. She had served dinner on the small dining table, which he bought from a second-hand furniture shop. He took a spoonful and complimented Nain on her cooking. She likes to hear his feedback whether it is good or bad she does not mind. But how can he ever criticise her cooking?

"Navin bhai says that people like us will soon get legal status." He said.

"Really? How come?"

"That is what Liberal Democrats are saying."

"But only if they come to power, isn't that true?"

"They will certainly come to power. I have prayed to Allah for their victory."

"Then nothing will stop them from winning." She said, "OK, tell me, what is the first thing you will do after becoming a legal?" She looked at him with her big curious eyes.

"I will visit my country for once. It has been eleven years since I saw my family,"

"And after that?"

"I will call my elder son Pappu here."

"And then?"

"Haven't really thought about it. What about you?"

She just looked at him.

"What is this? When it is your turn to answer, you hide behind silence." Mehar-e-Alam insisted, with a hint of complaint in his voice.

"I have never really thought about it." She said. Mehar-e-Alam thought how little he knows of her life while on the other hand his

life is like an open book of which she has read every word by now.

"I am going for a bath. I had no time in the morning." Nain said and left. He did the washing up and after cleaning the kitchen returned to his bedroom. He lied down waiting for Nain to come. Would she come tonight? His thoughts drifted to the future. By the grace of almighty Allah, if he becomes a legal resident, and if he gets a permanent visa to stay here, his life will be so much better. He will bring Pappu here and ask him to do some training, make him learn English, and when he gets a British passport, he will bring the whole family here. He dozed off while sketching the future plans of his life.

An alarm went off on his mobile. It is time to say his prayers. He got up and went to the bathroom. The scent of Nain's soap lingered. He did the Wuzoo and rolled out the JaNamaz on the floor and sat for prayers.

O Allah, please look after the whole world
O Allah, look after the Islamic world
O my lord, smoothen my path ridden with difficulties
O great almighty Allah, please forgive my sins
O my lord, I am a sinful man, shower your blessings on me
Help me my Allah and solve my problems
O Allah, let the Liberal Democrats win and form a government.
Ameen. May Allah fulfil my wishes.

When he got up after saying his prayers, he saw Nain standing in the doorway wearing a night dress made of thin fabric. The dim light in the backdrop reflected through the fabric and he could see the lines and curves of her body. He couldn't take his eyes off. She moved slowly and lay down on the bed with her one hand arched under her head. Her eyes searched his eyes questioningly as if asking, "What did you wish for?" But through the thin fabric of her night dress, for the first time Mehar-e-Alam's eyes could read an answer in the lines and curves of her body. It is the first time he can see her in a partially lit room. The door was still half opened and the dim light coming from the corridor looked like a milky path leading up to his bed. That night as he walked with Nain on this milky path, he felt that Allah has been so pleased with one of his noble deeds that he has rewarded him with a special tip.

When he woke for the Fajr Namaz in the early hours, he saw Nain still sleeping in his bed. That means she did not go to her room last night. One of her arms is still around his neck and a lock of her hair is lazily spread on her forehead. She is looking so innocent in the early morning light. He feels

so much at peace and content. Suddenly, a thought hit him. If Pappu comes here, life will not be the same. At this moment, he does not want it to change even a little bit. He doesn't even want to move fearing that if he moves, this moment will be lost like a reflection in the water.

He raised his hands in a prayer without getting up and said, "O Allah I do not care whether Liberal Democrats win or lose, whether they form the government or not, whether I get a legal status or not, I am happy the way I am with your blessings. O my Allah, please shower your blessings upon this sinful man as you always do. Ameen. May Allah fulfil my wishes!

The Mysterious Cheese Thief

Myra S. Sethi

Class 6, Barrow High Primary, London

There once lived a mouse whose name was Brie. She was at her younger brother's house; his name was Gouda. They were getting ready to go on holiday to Stilton with their grandad and were very eager. Gouda was just about to put his suitcase in the car when he noticed that something was wrong - their supply of cheese was missing!

"BRIE!" Gouda called, "Have you taken our supply of cheese?"
"No, I haven't. Why?" Brie replied from upstairs.

"It's not in the car where we left it, it's gone!" Gouda yelled back upstairs.
"What?" Brie said.

Gouda heard a drumming sound on the stairs and moments later, Brie appeared next to him. Gouda opened the car door and showed Brie the empty space where the cheese was meant to be. "It's missing. It was just here a bit ago, but I went upstairs to pack and as soon as I came back down, it was gone," Gouda said, nervous of what their grandad was going to say.

"Hmmm, you two go and investigate and try and find out who did it and I'll stay back and look after the rest of our stuff," the grandad said once they had told him what had happened. The two siblings set off in search of their precious

cheese; their grandad stayed back and started searching for clues.

“Let’s search for some clues first, Gouda!” Brie told him knowingly. She read a lot of mystery books in her spare time. They started searching for clues as to where their stash of stilton could have gone - they had gotten it out especially for their trip to Stilton. They looked for anything connected to the disappearance of their cheese. “Brie! Come and look here. It seems to be a trail of cheese.” Gouda said as he popped a piece in his mouth, “And it’s stilton too. This could be our cheese. I think someone stole it.”

They followed the trail for a while until it finally came to an end. Why had the trail just led to a hill?

“Gouda! Look at this. There seems to be a random rock here. Do you think it could have something to do with the trail?” Brie gasped. She pressed her hand onto the cold surface of the stone; it seemed to make an odd buzzing noise. An entrance opened up, replacing the rock, and growing bigger and bigger. It was a hidden button leading to a secret cave entrance - just like in her mystery books!

They walked through the dark passageway until they came into a brightly-lit room; it took a moment for their eyes to adjust. There were piles and piles of so many different types of cheese: blue cheese, camembert, cheddar, parmesan and... their stilton cheese! All of a sudden, they heard footsteps getting louder. “Quick, Gouda, we need to hide. Someone’s coming.”

Brie whispered to him.

They rushed behind a cosy-looking sofa and crouched down. They heard someone come and sit down. Abruptly, a beeping noise echoed through the hidden lair and then suddenly stopped. They heard two voices; one was louder than the other- this person must be on the phone.

“Yes, Malice. I have all of the cheese in the town,” the louder voice said. Malice? That name seemed familiar.

“Okay, well, be careful then. I’ve heard the news. There have been sightings of you. It’s on the headlines everywhere. Nox Grimtail spotted in Mouseville,” the person on the other end of the phone said.

Nox Grimtail? That must mean the other person was Malice Squeakleton. Of course, they’d heard the name Malice before - those two were the most wanted thieves in all of

Mouseland.

As soon as Nox had left, Brie went to the phone and called the police, and Gouda went and got their cheese. Moments later, the police had arrived and were arresting Nox Grimtail, who had just picked Malice up from the train station and brought him here.

"Thank you for helping us catch these two. They've been wanted by the police for ages," the police said and took Nox and Malice away.

Brie and Gouda returned home safely after an exciting morning and set off for Stilton-the village with their stilton - the cheese - and had the best time there.

The Primal Force

Suhan Sharma Sethi

Class Four, Barrow Hall Primary-London

Once upon a time there lived a gang of superheroes: The fire hero's name was Fin. The water one was called Wendy. The wind one was called William. The super speed one was called Sam. The super strength one was called Sid. The lightning one was called Lydia. The ice one was called Ibrahim. And the rock one was called Rory. These 8 called themselves The Primal Forces.

One day they came face to face with a challenge so daring it would test them to their very limits. They were searching the city for crime when suddenly, Sam saw a portal. He told the others its location and said he was going through it. Sid, Ibrahim, Lydia and Rory, all saw it from their places. They told Wendy, William and Fin, who couldn't see the portal, that they were going through it too. Out of nowhere, another portal appeared and this time, those 3 could see it as well. So, Wendy, William and Fin also leaped into it and found themselves in a world where you could express your thoughts freely. Soon they all met in this new world and spotted an enormous castle. Sam speedily ran to it, but the others couldn't catch up so he took a nap while he waited. When the others finally arrived, they walked across the colossal drawbridge, into the castle.

Inside was a sight you have never seen before! There were 8 different heroes training vigorously. They introduced themselves...The flying one was called Freddie. The ghost one was called George. The super stretch one was called Seth. The lava one was called Linda. The portal one was called Poppy. The time travel one was called Tim. The Invisibility one was called Issac. The elemental creation one was called Collin.

Poppy explained she had called them so they could help fight Dan the master of destruction.

She said they needed to go to Danglen, that's where Dan lived and initiated his chaos from. For that, she created a portal and they all walked through it. As soon as they did, lava balls started coming at them from every direction. Linda took the lava out of them and Rory made them part of the ground. A fire reached out in front of them, so Wendy put it out and Fin changed its direction. Strong winds blasted out at them, but William diverted them.

While they were busy doing all this, Poppy clarified that these were all tasks to get to Dan, so they had to go through them!

Next lay some cameras, so Issac went through and switched them off. After that, there stood a gigantic chasm, Collin created a path of rocks to tackle that problem.

Now there was a massive wall, so Sid destroyed it. Another wall appeared but it was too tall for Sid to smash, so George went through it and pressed a button on the other side, which got rid of that wall. Another chasm appeared but it was too deep to be filled up with anything, so Seth stretched himself and made a bridge. Now there were more cameras, but they sensed heat, so Freddie flew above them to switch them off. As Sam took a step, a bit of the ground fell out, so he ran across and got Ibrahim to make a path out of ice to fill in the gaps. Next, they came across a river with a bridge across it but if they were to step on the bridge then the sharks in the river would've eaten them. So, Lydia electrocuted them, paralysing the sharks and helping them to cross the bridge.

They had all used their powers for the tasks required to get closer to Dan, except for Tim. And

you'll find out why, in a bit. In the blink of an eye, Dan appeared. The 16 superheroes and Dan fought for days, and it had seemed that the fight will go on forever until Tim came up with an idea. They whispered and decided that it would work!

Tim lured Dan into a time travel portal with Poppy, to the point where Dan got his powers. Then Poppy sent him to where the Master of Acid, Adam was. In his acid practice Adam, disintegrated Dan's flesh until there was only a pile of bones left. Adam didn't do it on purpose; he was still training you see.

Tim and Poppy then returned to their normal time and they all celebrated, for they had vanquished Dan finally. The Primal Forces returned home, and everyone lived happily ever after.